सिद्धयोग

2016

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

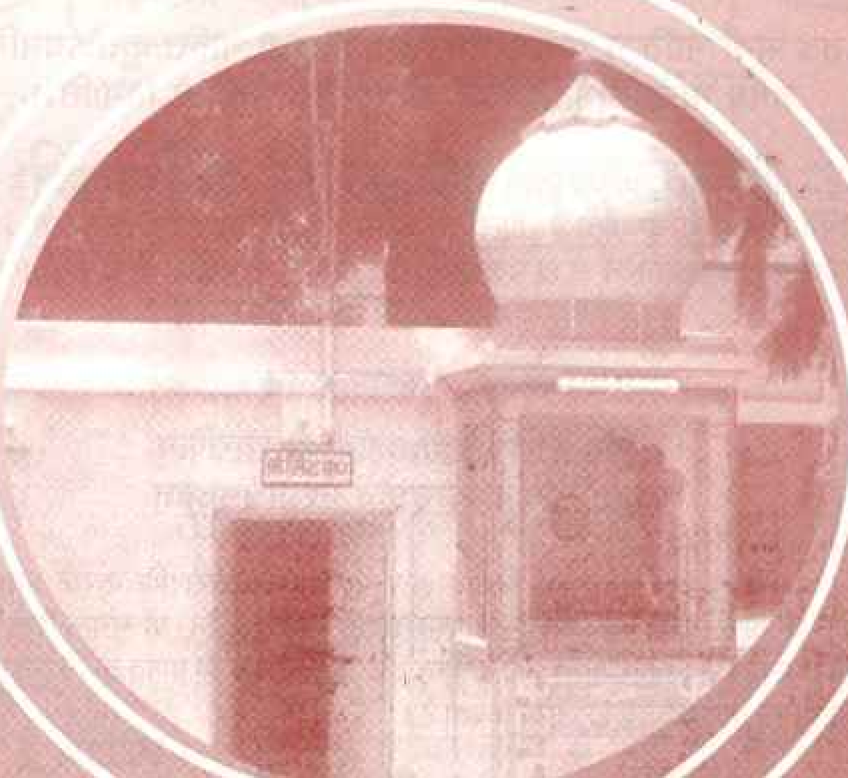

एक प्रति : रू.20
द्विवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49, अंक : 8
नवम्बर 2016

प्रकाशन तिथि : 01.11.2016

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र

अमृत-कण

नित्यो नित्यानां चेतनचेतनानाम्
एको बहूनांयो विदधाति कामान्

अर्थ– जो नित्यो में नित्य, चेतना में चेतन और अकेला ही बहुतों का भोग प्रदान करता है साख्ययोग द्वारा ज्ञातप्य उस सर्वकारण देवका जानकर (पुरुष) समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतों भान्ति कुतोंऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व, तस्य भासा सर्वोमदं विभाति।।

अर्थात् वहाँ सूर्य प्रकाशित नही होता न चन्द्र और तारें प्रकाशित होते है। और न यें बिजलियाँ ही चमकती है। फिर यह अग्नि तो कहाँ प्रकाशित हो सकता है ? ये सब उसके प्रकाशित होने से ही प्रकाशित होते है उसी के प्रकाश से ये सब प्रकाशित है।

◆ ◆ ◆

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढ़वत्

अर्थात् अपने देह को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि करके हयानरूप मन्थन के अभ्यास से स्वप्रकाश परमात्मा को छिपे हुयें (अग्नि) के समान देखे। जैसे अरणि मन्थन से लकड़ियों से अग्नि प्राप्त की जाती है वैसे ही प्रणव के निरन्तर जाप से परमात्मा का प्राकट्य हो जाया करता है।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 8

नवम्बर
2016

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्र्येऽप्यप्रतिम प्रभाव।।

अर्थात्

हे जगन्निवास ! आप इस चराचर जगत के पिता हैं। आप गुरुओं के भी गुरु एवं पूज्य हैं। अप्रतिम प्रभाव वाले तीनों लोगों में आप के समान कोई नहीं है। फिर आप से बढ़कर और कोई कैसे हो सकता है।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	6
3.	श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	9
4.	संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ – प्रो. ऋषिराम शर्मा	12
5.	गर्दन पर तलवार – जगदीश राए बंसल	15
6.	श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा – श्याम मनोहर श्रीवास्तव	16
7.	योग–आसन	19
8.	श्री सूर्य से स्वास्थ्य–लाभ – डॉ. श्री सुरेन्द्र प्रसाद जी गर्ग	20
9.	कलि मल प्रभाव – कृष्ण कुमार पांडेय	23
10.	पूर्णत्व की पहली सीढ़ी–शुचिता – सुश्री नलिनी शर्मा	26
11.	योग –साधना कृषि कर्मवत् – आचार्य चन्द्रहास शर्मा	30
12.	आयुर्वेद एवं योग – डॉ. ब्रह्मचारी श्री दासलाल शर्मा	35
13.	सतरंगी सेहत – डॉ. शिखा शर्मा	38
14.	जब से गुरु को चाहा है – रवि सक्सेना	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

योगी का जात्यन्तर परिणाम

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

जात्यान्तर परिणाम का अर्थ है एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तित होना। आम लोगों के सामने यह प्रश्न सदा सर्वदा बना रहता है कि एक योगी अपने आपको एक जाति से दूसरी जाति में कैसे परिवर्तित कर सकता है। मनुष्य, मनुष्य ही रहेगा, गधा, घोड़ा, खच्चर आदि नहीं बन सकता। यह बात प्रकृति के नियम के प्रतिकूल मालूम पड़ती है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। प्रकृति के खजाने में सभी तत्व सदा सर्वदा परिपूरित रहते हैं। जैसा कि इसकी पुष्टि योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी गीता में की है।

ना सतो विद्यते भावो,

ना भावो विद्यते सतः

उभयोश्ति दृष्टवोन्ते स्त्वन योरत्तत्व दर्शिभि।

अर्थात्– जो वस्तु नहीं है वह कहीं से आयेगी नहीं और जो है वह कहीं जायेगी नहीं। केवल मात्र परिणामान्तर होता रहता है। मनुष्य के शरीर में रोज नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं। आज जो परमाणु शरीर में हैं कल वह नहीं रहेंगे।

जो कल थे वह आज नहीं हैं इस प्रकार से परिणामान्तर नित्य होता रहता है। जिस समय किसी बालक का जन्म होता है उस समय उसकी आकृति बहुत छोटी होती है। शनैः शनैः वह जैसे – जैसे पौष्टिक आहार पाता रहता है, त्यों–त्यों शरीर बढ़ता रहता है।

थोड़े दिन के बाद ऐसा समय आ जाता है कि उसका शरीर पहचाना भी नहीं जा सकता है। जब वह कैसा था और कहाँ चला गया ? केवल मात्र यह नैत्यिक परिणाम का ही फल हुआ करता है।

इसी प्रकार से मनुष्य का जात्यन्तर परिणाम भी होता रहता है। सूक्ष्म शरीर में जो परिणाम होता है, उसके पूरे लक्षण शरीर स्थूल शरीर में हो जाया करते हैं नीति शास्त्र का वचन है –

आकारैरगतैर्गत्या,

चेष्टया भाषणेन च।

नेत्र वक्त्र विकारैश्च,

ज्ञायतेऽन्तर्गतं मनः।।

अर्थात् – आकार के इशारों से चलने फिरने की गति से हरकत और बोलने से भीतर के

मन भी पहचान होती है। किसी के मन में काम वासना आदि भावों का उद्गम है या क्रोधादि का उद्वेग है, तो उसके मन की आकृति तदानुरूप बदल जाती है। अर्थात् उसके अन्तःकरण में जो परिणाम उदय होता है वही उसकी बाह्य आकृति में भी दिखलाई दे जाया करता है। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम भी मनुष्य के स्वकृत्त कर्म विपाकानुसार मनुष्य का होता रहता है यह हो सकता है कि इस समय मनुष्य है और कालान्तर में इस आयु के भोग लेने के बाद वह अपने अच्छे या बुरे कर्म विपाकानुसार किसी अन्य जाति के अंदर जन्म लें। उसकी मनुष्य जाति छूट कर किसी पशुपक्षी आदि की जातियों में वह परिणित हो जाये यह जात्यन्तर परिणाम आदि महासिद्ध ईश्वर के संकल्पानुसार हुआ। किन्तु योगी की क्या सामर्थ्य हुआ करती है, इसको योग दर्शन के विभूति पाद को पढ़ने वाले साधक जानते ही हैं। योगी की कर्तुमकर्तुमन्यथा कुर्तम् की उक्ति सब प्रकार परिपूर्ण होती ही है। वह चाहे तो अपने शरीर को एक जाति से दूसरी जाति में परिणित कर सकता है, क्योंकि प्रकृति पर उसकी पूर्णरूपेण हुकूमत रहती हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण लोक और वेद में सुनने में आते हैं योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव जात्यन्तर परिणाम के विषय में निर्देश करते है :—

' जात्यन्तर परिणाम : प्रकृत्यापूरात '

अर्थात् — जात्यन्तर परिणाम में पूर्व जन्म कर्म निमित्त को पाकर इन्द्रियाँ और अवयव प्रवेश कर जाते हैं, एक परिणाम दूसरे परिणाम में परिवर्तित हो जाया करता है। इससे आगे के सूत्र में भगवान पतंजलि देवजी ने एक जाति से दूसरी जाति में जीवात्मा कैसे परिवर्तित होता है वह एक सूत्र में स्पष्ट सूचित किया है :—

' निमित्तम प्रयोजक प्रकृतीनां वरण
भेदस्तु ततः क्षेत्रिकरत्।

धर्मादि प्रकृतियों का निमित्त प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह अवश्य होता है, जहाँ धर्म परिपूरित रहेगा, वहाँ अधर्म नहीं होगा, जहाँ सूर्य का प्रकाश होगा, वहाँ अंधकार स्वाभाविक ही नहीं रहेगा। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम में भी जिस प्रकार एक कृषक एक ऊपर के खेत को जल से भरता है और वह खेत परिपूरिल हो जाने के बाद यदि उसकी सीमा का भेदन कर दिया जाये तो नीचे के खेतों में वह जल अपने आप ही परिपूरित हो जाया करता है। इसी प्रकार योगी जब अपना जात्यन्तर परिणाम करने लगता है तो उसके अवयव और इन्द्रियाँ अपने इस स्थिति परिणति को बदल कर दूसरे परिणाम में प्रवेश कर जाता है और उस योगी का जात्यन्तर परिणाम हो जाता है।

व्यास भाष्य के अनुसार जात्यन्तर परिणाम में वर्ण भेद क्षेत्रिक के समान होता है धर्मादि निमित्त उन देह प्रकृति आदि में प्रवर्तक नहीं होते हैं, क्योंकि कार्य से कारक को प्रेरणा नहीं मिलती है फिर किस प्रकार होता है। इसी बात को समझाने के लिये किसान का उदाहरण दिया गया है इस धर्मादि निमित्त से किसान के समान वर्णभेद होता है। जैसे एक किसान जब एक जल भरी क्यारी से दूसरी क्यारी में जल ले जाना चाहता है तो वह अपने फायदे के अनुसार ऊपर की क्यारी से नीचे की क्यारी में जल को हाथों से नहीं सींचता प्रत्युत उसके मेंड को काट देता है, जिसके फलस्वरूप वह

जल उससे आगे की क्यारी में स्वतः परिपूरित हो जाता है। इसी प्रकार से जात्यन्तर परिणाम चाहने वाले योगी के धर्म देह और प्रकृति के प्रतिबंधक स्वरूप उस अधर्म को नष्ट कर देता है। जो अधर्म अभी तक योगी के देह इन्द्रिय और अवयवों को मेंड बन कर जात्यन्तर परिणाम से रोके रहता है वह हट जाता है उसके हट जाने के बाद देह और इन्द्रियों की प्रकृति जात्यन्तर परिणाम के लिये अपने आप विकार को धारण कर लेती है, इस बात को यूँ समझना चाहिये कि जिस प्रकार एक किसान अपने खेत में जल को भर देता है, किन्तु उस खेत में जल को तो भर देता है, किन्तु उस खेत में उगने वाले पौधे गेहूँ, जौ, चना, धान, मूँग आदि अपनी प्रकृति के अनुसार उस जल से रस को स्वयं सींचते हैं, किसान का काम तो इतना ही था कि उसने खेत में जल को पहुँचा दिया। किन्तु उनके अंदर रस भरना किसान की शक्ति से बाहर है। वह शक्ति ईश्वरीय देन है जो पौधों, की जड़ों और बीजों में रहा करता है यही उन पौधों को जल से परिपूरित कर दिया करती है वैसे ही धर्म भी अधर्म निवृत्ति का कारण तो बनता है, किन्तु उसकी शक्ति को देह इन्द्रियाँ और अवयव स्वतः ही सींचते हैं शुद्धि और अशुद्धि में धर्म और अधर्म में अत्यन्त विरोध है। इसलिये धर्म प्रकृति के परिवर्तन में उपादान कारण न होकर निमित कारण होता है। इसमें नंदीश्वर और नहुषादि के उदाहरण हैं जैसे नहुष राजा को ऋषियों के शाप से तत्काल ही उसका जाति परिवर्तन हो गया। इसलिये जब योगी जात्यन्तर परिणाम का विचार करता है। तब वह धर्मादि निमित्त को पा करके जो जात्यन्तर परिणाम अब तक होता आया है उसके अतिरिक्त भी जब योगी अपने मन में यह सोचता है कि मैं अब इतने समय के लिये अमुक जाति में अपने आपको बदल लूँ तो उसके संकल्प मात्र से ही तत्काल परिणाम होने लगता है एवं उसका शरीर एवं इन्द्रियादि बदल जाया करते हैं। क्योंकि योगी की प्रकृति पर पूर्ण हुकूमत होती है इसका संकल्प ही वर्ण भेद में कारण होता है वैसे लोक में मन के संकल्पानुसार आम परिवर्तन देखने में आते हैं जैसे कि लेख के आरम्भ में हमने यह समझने की चेष्टा की थी कि मनुष्य के मन के अंदर जो भावनायें कायम रहती हैं, वह उसकी आकृति पर भी उन भावों को प्रकट कर दिया करती हैं इस क्षेत्र में मन के प्रभाव का जीता जागता उदाहरण हमारे सुनने में आया। एक मनुष्य के छोटे बच्चे को रात्रि के समय भेड़िया उठा ले गया वह बच्चा मादा भेड़ियों ने पाल लिया। कुछ समय बाद आगरे के शिकारियों ने पकड़ा तब उसकी पूरी–पूरी हरकतें तबदील हो चुकी थीं। वह भेडियों जैसा व्यवहार करता था, भेड़ियों की बोली बोलता था, उसकी आकृति भेड़ियों जैसी थी। वह उसके मन का प्रभाव था कि उसकी हर हरकत भेड़ियों के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। योगी के जात्यान्तर परिणाम में उसका संकल्प मात्र ही परिवर्तन का कारण बन जाता है, क्योंकि वह **' कर्तुम कर्तुम कर्तुम '** की योग्यता वाला हो जाता है।

●सम्पादकीय

प्राण निरोध से चित्त वृत्ति निरोध

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

पिछले अंक में यह बतलाने का प्रयास किया गया था कि वे कौन – कौन से उपाय हैं जिनसे प्राण स्पन्दन का निरोध हो सकता है क्योंकि योगियों में यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वृत्ति निरोध के लिये प्राण स्पन्दन का निरोध आवश्यक है। प्राण स्पन्दन के उपाय के रूप में योग वाशिष्ट के कतिपय श्लोकों का आधार लिया गया था। इसी क्रम में निम्न श्लोक द्रष्टव्य है।

तालुमूलगतां यत्नजिह्वया क्रम्य घंटिकाम्।
ऊर्ध्वरन्ध्रगते प्राणे प्राणस्पन्दो निरुध्यते।

अर्थात् तालु के मध्यभाग में एक लटकती हुइ मॉसण्ड है जिसे कोई–कोई छोटी जिह्वा भी कहते हैं उस कपाल कुहर या जिह्वा मूल में जिह्वा को उल्ट कर लगाये जाये तो प्राण स्पन्दन रुक जाता है। इस क्रिया को योग शास्त्र में लम्बिका योग भी कहा गया है इसे ही खेचरी मुद्रा या नभोमुद्रा भी कहते हैं।

खेचरी मुद्रा को करने के लिये छेदन, दोहन और चालन की क्रिया करनी होती है। हठयोग प्रदीपिका में भी इसका निरूपण हुआ है यथा–

छेदन चालन दोहैः कलां क्रमेण प्रवर्धयेत्तावत्
सा यावद्भू मध्य स्पृशति तदानीं हि खे रीसिद्धिंः।

अर्थात् छेदन चालन तथा दोहन से जिह्वा को तब तक बढ़ावे जब तक कि भ्रूमध्य का स्पर्श न कर ले। जिह्वा के अधोभाग में एक तन्तु होती है जिससे जिह्वा संयुक्त रहती है उसको धीरे–धीरे बांस की तन्तु से छेदन करना चाहिये। 'चालन' क्रिया में जिह्वा को गीले वस्त्र से लपेट कर धीरे – धीरे दाँये, बाँये घुमाया जाता है। दोहन क्रिया में जैसे दूध को दुहा जाता है उसी प्रकार से जिह्वा को लम्बा करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से जिह्वा को लम्बा करके उसे कपालकुहर में प्रवेश कराया जाता है कपाल कुहर में ही सुषुम्ना का द्वार है। इस प्रकार से योगी लोग खेचरी का अभ्यास करके प्राण स्पन्दन को निरुद्ध कर देते हैं। जिससे स्वतः ही चित्तवृत्ति का निरोध होने लगता है। खेचरी मुद्रा के प्रसंग में मुझे गुरुदेव भगवान् की बतलाई घटना याद आ रही है। सन् 1930–32 के वर्षो में गुरुदेव श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में रहा करते थे। श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने इन्हें खेचरी क्रिया की छेदन, दोहन और चालन के अभ्यास की आज्ञा दी। गुरुदेव जी अभ्यास में कुछ शिथिलता बरत रहे थे। एक दिन उन्होंने खुली आँखों से खेचर सिद्ध योगियों को आकाश मण्डल में विचरते देखा। वे सोचने लगे कि मैं भी इनकी भाँति गगनचारी हो जाता। अतः अपनी शिथिलता पर क्षोभ मानते हुये उन्होंने स्टील की बनी ब्लेड से ही जीभ के नीचे की तन्तु को जल्दी से कटना शुरू कर दिया। इस तन्तु के कटने से रक्त की धारा बहने लगी अन्तर्यामी श्री प्रभु जी ने आकाश में प्रकट होकर गुरुदेव के

हाथ से ब्लेड छीन लिया और दूर फैंक दिया और कहने लगे। " अरे ! तुमने यह क्या कर लिया। लोग क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते है।" उधर उनके एक गुरु भाई रतनलाल ध्यान में बैठे हुये थे श्री प्रभु जी ने कहा – रतनलाल ! देखो तुम्हारा गुरुभाई क्या कर रहा है तुम जाकर उसे संभालो, नहीं तो दुनियाँ के लोग क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूँगे होते हैं। तुम अमुक – स्थान से इस जड़ी को उखाड़ लाओ और इसके मुह में भर दो।

श्री रतनलाल जी ध्यान से उठे और श्री प्रभु जी द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जाकर जड़ी को उखाड़ लाये और उसके रस को निचोड़ कर गुरुदेव के मुख में डाल दिया। इससे घाव बहुत जल्दी भर गया। इस प्रकार से गुरुदेव की खेचरी प्रभु जी ने अपने संकल्प से सिद्ध करा दिया। योगि समाज में परम पूज्य देवरहा बाबा का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। उन्हें भी श्री प्रभु रामलाल जी ने सहज ही खेचरी सिद्ध करा दी थी। उनकी काफी लम्बी आयु थी। जिनको खेचरी सिद्ध हो जाती है उनका प्राण निरुद्ध रहता है और वे लोग बहुत समय तक समाधिस्थ रह सकते हैं। खेचरी सिद्ध योगियों को भूख – प्यास भी नहीं लगती है **' न तस्य क्षुधा न तृषा यो वेत्ति मुद्रां खेचरीम् '** इसके अभ्यासी की आयु क्षीण नहीं होती है और वे सदा नवयौवन सम्पन्न रहा करते हैं। योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलिदेव जी ने विभूतिपाद में एक सूत्र दिया है **' मूर्ध ज्योतिषिसिद्ध दर्शनम् '** अर्थात् मूर्धा ज्योति में ध्यान लगाने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। एक स्थल पर मन और प्राण के लय हो जाने पर सिद्धियाँ स्वतः ही प्रकट हो जाया करती हैं। प्राण स्पन्दन के निरोध के एक अन्य उपाय का वर्णन करते हुये भगवान् वाशिष्ट श्री राम जी से कहते हैं।

द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलाम्बरे
संविदृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दो निरुध्यते

अर्थात् नासिका के अग्रभाग में दस अंगुल पर्यन्त विमल अम्बर में – आकाश में दृष्टि को स्थिर करके ध्यान लगाने से प्राण स्पन्दन रुक जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी प्रकार की बात लिखी है

समकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशचानषलोकयन्

अर्थात् अपने काय, ग्रीवा, और सिर को एक सीध में रखते हुये अचल व स्थिर होकर बैठते हुये इधर–उधर न देखते हुये नासिका के अग्रभाग में ध्यान को केन्द्रित करे।

प्राण स्पन्दन निरोध का एक अन्य उपाय बतलाते हुये महर्षि वशिष्ठ कहते हैं –

अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेण तालूर्ध्वद्वादशान्तगे
प्राणे गलित संवित्तो प्राणस्पन्दो निरुध्यते।

इस प्रकार से पुनः–पुनः अभ्यास करते हुये अनाहत चक्र से (द्वादशार) प्राण को षोड्शार अर्थात् विशुद्ध चक्र तक ले आवें। इस प्रकार विशुद्ध चक्र में प्राण को रोकने पर भी प्राण स्पन्दन रुक जाता है। एक प्रकार से यह षट चक्र की साधना ही है। इस प्रकार से गुरुपदिष्ट मार्ग से जितेन्द्रिय होकर हित् भुक्, ऋतभुक् होकर धौति, वस्ति आदि षटकर्मो को करते हुये देह को

विशुद्ध करके सुषुम्ना में प्राण प्रवेश के लिये महामुद्रा आदि दशमुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये। दस मुद्राओं का वर्णन हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से आया है –

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी
उड्डियान मूल बन्धो जालन्धराभिधः
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्ति चालनम्
मुद्राणां दशकं चेदं गोपनीयं प्रयत्नतः।

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली तथा शक्ति चालनी ये दस मुद्रा हैं। हठयोग एवं कुण्डलिनी जागरण में इन मुद्राओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन मुद्राओं के अभ्यास करने से 72 हजार नाड़ियों का शोधन होता है तथा सभी रक्तवाहिनी तथा ज्ञानवाहिनी (प्राणवाहिनी) नाड़ियाँ शुद्ध होती है जिससे स्वतः ही योगी का मन एकाग्र हो जाता है। सतोगुण की वृद्धि होती है और ज्ञान का उदय होने लगता है। रोग शोक नष्ट हो जाते है और साधक का अध्यात्म में स्वतः प्रवेश हो जाता है। इनमें खेचरी मुद्रा तो बहुत ही दिव्यता को प्रदान करने वाली मुद्रा है। ऐसे योगी कल्पान्तजीवी होते हैं। वर्तमान युग में खेचरी सिद्ध योगियों में परम पूज्य देवरहा बाबा का नाम आता है। उन्होंने शताधिक वर्षों तक जीवित रहकर लोगों में योग के प्रति आस्था वान बनाया है। आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने ही इन्हें खेचरी सिद्ध कराया था इस बात को वे स्वयं अनेक बार सभी लोगों को बताया करते थे।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध आठ के बारहवें अध्याय में एक तात्विक कथा-वर्णन आया है। वह है, मोहनी रूप को देखकर महादेव जी का मोहित होना। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव जी इस महत्तर विषय में बताये हैं कि जिस पुराण में जो महानायक है, उसकी महिमा वर्णन है। देवी पुराण में, ब्रह्मा, विष्णु, शिव उनकी स्तुति गाते, महिमा वर्णन करते दिखाये गये हैं। शिवपुराण में भगवान शिव महानायक हैं, अन्य सभी देव उनकी स्तुति महिमा गान करते हैं। वस्तुतः वे उन शुद्ध ब्रह्मतत्व की महिमा, उनको निमित्त मानकर करते हैं। जिससे सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति हुई है। उस परात्पर सत्ता से ही शक्ति और शक्तिधारक त्रिदेव की भी उत्पत्ति हुई है। अतः लीलाओं में भगवान शिव राम-कृष्ण के दर्शनार्थ जहाँ जाते हैं वहीं राम-कृष्ण अनन्य भाव से उनकी उपासना करते हुये वर्णित हैं।

मोहनी अवतार लीला में भी महायोगियों की अपनी योगमाया का खेल खेला गया है। अस्तु! कालकूट हलाहल को पान कर प्रजा का त्राण करने वाले शिव जी ने जब यह सुना कि हरि ने स्त्री रूप धारण कर असुरों को मोहित कर अमृत देवताओं को पिला दिया, तो वे भवानी-सहित उनके पास गये। श्री हरि ने बड़े प्रेम से शक्ति सहित शिव जी का स्वागत सत्कार किया।

भगवान शिव ने कहा- प्रभो ! कोई आपको ब्रह्म समझते हैं कोई धर्म। कोई प्रकृति पुरुष से परे परमेश्वर मानते हैं। विमला, उत्कर्षिणा, ज्ञाना, क्रिया, योग, प्रह्वी, सत्या ईशाना और अनुग्रहा इन नौ शक्तियों से युक्त परम पुरुष मानते हैं। दूसरे क्लेश-कर्म आदि बन्धन से रहित पूर्वजों के भी पूर्वज, अविनाशी पुरुष विशेष के रूप में मानते हैं -

त्वां ब्रह्म के चिदवयन्त्युत धर्म मेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम्।
अन्येऽवयन्ति नवशक्ति युक्तं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्म तन्त्रम् ।।9।। स्कं 8 अं 12

प्रभो ! जब-जब आप अवतार ग्रहण करते हैं, तब मैं उनका दर्शन करता हूँ। अब मैं आपके मोहनी अवतार का भी दर्शन करना चाहता हूँ। हमारे मन में दर्शन का बड़ा कौतूहल है।

भगवान नारायण ने कहा - देवशिरोमणे ! आप उसे देखना चाहते हैं, अतः मैं दिखाऊँगा परन्तु वह रूप तो कामी पुरुषों का ही आदरणीय है क्योंकि वह कामभाव उद्दीपक है। ऐसा कहते - कहते भगवान अन्तर्धान हो गये। वहाँ भावान्तर से सुन्दर उपवन दिखाई पड़ा तथा मनोरम दृश्यों के बीच एक अनिन्दय, रूपमती बाला कन्दुक क्रीड़ा करती । सलज्ज भाव भंगिमा से रह - रह कर शंकर जी की ओर देखती पुनः क्रीड़ा में रत हो जाती। उसके हाव-भावों से शंकर जी कामातुर हो गये और भवानी के सामने ही लज्जा छोड़कर उस बाला की ओर चल पड़े। उसे अपने आलिंगन पास में बलात्

बाँध लिये। वह मायापति की माया से मोहनी अपने को आलिंगन मुक्त कर ली। इधर शंकर का वीर्य अमोघ है फिर भी मोहनी की माया से वह स्खलित हो गया। वीर्यपात हो जाने के बाद भगवान शंकर को अपनी स्मृत हुई। वे अपने आत्मःस्वरूप में अवस्थित हो गये। भगवान ने देखा कि भगवान शंकर को न ग्लानि हुआ और न खेद। उन्होंने कहा – देव शिरोमणि। मेरी मोहनी माया से विमोहित होकर भी आप स्वयं ही आत्मप्रतिष्ठित हो गये। यह बड़े आनन्द की बात है –

दिष्टया त्वं बिबुध श्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थित:।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्गमायया।।38।। अ.12 स्क.8

भगवान शंकर जी ने भवानी से कहा– जब मैं एक हजार वर्ष की समाधि से उठा था, तब तुमने मेरे पास आकर पूछा था कि आप किसकी उपासना करते हैं। वे ही साक्षात सनातन पुरुष हैं। न तो काल ही इन्हें अपनी सीमा में बाँध सकता है और न वेद ही इनका वर्णन कर सकता है। इनका यथार्थ स्वरूप अनन्त और अनिर्वचनीय है –

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै।
स एषे साक्षात् पुरुष: पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेद:।।44।। अ.12 स्क.8

तेरहवें अध्याय में आने वाले सात मन्वन्तरों का वर्णन किया गया है। विवस्वान् के पुत्र श्राद्धदेव (वैवस्वत) सातवें मनु हैं। वर्तमान मन्वन्तर ही उनका कार्यकाल है। कश्यप की पत्नि के गर्भ से भगवान वामन का अवतार हुआ है।

अब संक्षेप में आने वाले सात मन्वन्तरों का विवरण सुनो। अर्थात् आठवें मन्वन्तर में सावर्णि मनु होंगे। इन्द्र होगें विरोचन के पुत्र बलि। गालव, दिप्तिमान, परशुराम अश्वस्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृङ्ग, और भगवान व्यास आठवें मन्वन्तर में सप्तर्षि होगें। इस समय ये लोग योगबल से अपने–अपने आश्रम मण्डल में वर्तमान हैं।

इमे सपृर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगत:।
इदानीमासते राजन् स्वेस्व आश्रम मण्डले।।16।। अ.13 स्क.8

देवगुह्य की पत्नी सरस्वती के गर्भ से सार्वभौम नामक भगवान का अवतार होगा।

योगेश्वर शुकदेव जी ने कहा– परीक्षित ! नवमें मनु दक्षसावर्णि होगें। आयुष्मान की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से ऋषभ के रूप में भगवान का कलावतार होगा।

दसवें मनु उपश्लोक के पुत्र ब्रह्मसावर्णि होंगे। विश्वसृज की पत्नी विषूचि के गर्भ से भगवान विष्वक सेन के रूप में अंशावतार होगा।

इग्यारहवें मनु धर्मसावर्णि होंगे। आर्यक की पत्नी वैधृता के गर्भ से धर्मसेतु के रूप में भगवान का अंशावतार होगा।

बारहवें मनु रूद्रसावर्णि होंगे। सत्यसहा की पत्नी सून्तता के गर्भ से स्वधामा के रूप में

भगवान का अंशावतार होगा।

तेरहवें मनु देवसावर्णि होंगे। देवहोत्र की पत्नी वृहती के गर्भ से योगेश्वर रूप में भगवान का अंशावतार होगा।

चौदहवें मनु इन्द्रसावर्णि होंगे। सात्रायण की पत्नी विताना के गर्भ से वृहद्भानु के रूप में भगवान अवतार ग्रहण करेंगे।

ये चौदह मनवन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य में चलते रहते हैं। इन्हीं के द्वारा एक हजार चतुर्युगी वाले कल्प के समय की गणना की जाती है।

चौदह अध्याय का सारांश यह है कि सभी मन्वन्तरों में अवतरित भगवान सप्तर्षियों तथा उस समय के इन्द्र द्वारा धर्म की स्थापना और अधर्म का उच्छेद किया करते हैं। भगवान युग–युग में सनक आदि सिद्धों का रूप धारण करके ज्ञान का, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों का रूप धारण करके कर्मयोग का और दत्तात्रेय योगेश्वरों के रूप में योग का उपदेश करते हैं –

ज्ञानं चानुयुगं ब्रते हरिः सिद्धस्वरूपधृक्।

ऋषिरूप धरः कर्म योगं योगेश रूप घृक।।8।। अ.14 स्क.8

उपर सनक, याज्ञवल्क्य, दत्तात्रेय आदि नाम संकेत मात्र हैं। कब वे किस नाम रूप से ज्ञान, कर्म, योग का प्रचार करते हैं यह अन्तर्दृष्ट सम्पन्न लोग ही जान सकते हैं।

अष्टम् स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय में परीक्षित ने भगवान शुकदेव जी से एक अपने मानस संदेह का समाधान पूछा है। परिपूर्ण भगवान द्वारा वामन रूप में याचना करना और निरपराध बलि को बांधना यह कैसे सम्भव हुए। प्रभो ! आप इस बात का निराकरण करें।

श्री शुकदेव जी ने कहा – जब इन्द्र ने बलि को पराजित कर उसके प्राण और सम्पत्ति छीन लिये, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्य ने बलि को अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया। महात्मा बलि ने अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित कर दिया। वे तन–मन–धन से गुरुदेव की सेवा करने लगे।

प्रसन्न होकर गुरुदेव शुक्राचार्य ने बलि से विश्वजीत नाम का यज्ञ कराया। फलस्वरूप दिव्य रथ, अक्षय तरकस एवं दृढ़ धनुष बलि को प्राप्त हुआ। दादा प्रहलाद जी ने उन्हें कभी न मुरझाने वाली एक माला दिया। शुक्राचार्य ने एक शंख दिया। अपार सेना सहित बलि ने अमरावती को चतुर्दिक घेर कर युद्ध शुरू कर दिया। अमरावती पर बलि का अधिकार हो गया।

इससे देवमाता अदिति को बड़ा दुःख हुआ। वे परम प्रभाव शाली कश्यप मुनि के समाधि से उठने पर उनके पास गयीं। " निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरताश्चिरात् "। कश्यप जी ने अदिति के उदास चेहरे को देखकर पूछा– प्रिये ! गृहस्थाश्रम तो जो लोग योग नहीं कर सकते, उन्हें भी योग का फल देने वाला है। क्या ? इस समय धर्म, अर्थ, काम के सेवन में विघ्न तो नहीं हो रहा है –

अपि वाकुशलं किश्चिद् गृहेषु गृहमेधिनि।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ।।5।। अ.16 स्क.8

(क्रमशः)

संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

भौतिक विज्ञान तथा प्रातिभज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर है। भौतिक विज्ञान के परिक्षण के लिए भौतिक साधन तथा वैज्ञानिक की बुद्धिसामर्थ्य पर निर्भरता है जबकि प्रातिभज्ञान के लिए ऐसी कोई निर्भरता नहीं है, अपितु संयम की योग्यता की आवश्यकता है। संयम की योग्यता के लिए अष्टांगयोग की सिद्धि चाहिए। भौतिक विज्ञान का क्षेत्र तथा फल दोनों सीमित हैं, जबकि प्रातिभज्ञान का क्षेत्र तथा फल दोनों असीमित तथा कल्पनातीत हैं। जब तक इन्द्रियाँ अपने विषयभोगों में आसक्त हैं और मन उनका अनुगमन करता है तथा बुद्धि मन की वृत्तियों को ग्रहण करती है तब तक सामान्य शब्दज्ञान ही रहता है तथा प्रातिभज्ञान का विकास नहीं होता, आध्यात्मिक ज्ञान भी शास्त्रज्ञान तथा महात्माओं से प्राप्त श्रुतज्ञान तक सीमित रहता है। इस ज्ञान से आत्मसाक्षात्कार सम्भव नहीं। शास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि –

न गच्छति विना पानं व्याधिः औषधशब्दतः।
विना अपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैः न मुच्यते।।

अर्थात् जिस प्रकार केवल औषधि का नाम लेने मात्र से बिना उसका सेवन किये रोग नहीं जाता यानि रोगमुक्ति नहीं मिलती, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के शब्दों का उच्चारण करने मात्र से उसकी चित्त में अपरोक्ष अनुभूति किये बिना मोक्ष नहीं मिलता। अतः अपरोक्ष अनुभूति के लिए अष्टांगयोग की साधना की सिद्धि अत्यावश्यक है। इस साधना से चित्त में विशेष परिवर्तन होते जाते हैं, क्योंकि –

''तज्जयात् प्रज्ञालोकः''

अर्थात् योगसिद्धि से प्रज्ञालोक यानि ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है, प्रज्ञा की सात प्रान्तभूमियों में विशुद्ध बुद्धि का प्रवेश होता है। योगदर्शन का कथन है कि –

''तस्य सप्तधाः प्रान्तभूमिः प्रज्ञाः''

अर्थात् जब साधना की सिद्धि से निर्मल विवेकख्याति के द्वारा चित्त का मलावरण नष्ट हो जाता है तब सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली प्रज्ञा (विशुद्ध बुद्धि) की प्राप्ति होती है। चित्त में तीन विशेष परिणाम यानि, एकाग्रतापरिणाम, समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम प्रकट होते हैं तथा विशुद्ध बुद्धि में सात विशिष्ट अवस्थायें प्रकट होती हैं, वह हैं –

(1) ज्ञेयशून्य अवस्था जिसमें सभी ज्ञातव्य का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

(2) हेयशून्य अवस्था जिसमें दृष्टा तथा दृश्य के एकात्मक संयोग का अभाव होने से भ्रान्तिज्ञान नष्ट हो जाता है।

(3) प्राप्यप्राप्त अवस्था जिसमें कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता।

(4) चिकीर्षाशून्य अवस्था जिसमें कृतार्थता की अनुभूति होती है।

(5) चित्तमुक्ति अवस्था जिसमें चित्त में संचित कर्माशय का नाश हो जाता है।

(6) गुणलीनता अवस्था जिसमें माया के गुण पुरुषार्थशून्य होकर अपनी कारणरूपा प्रकृति में लीन हो जाते हैं।

(7) आत्मस्वरूपा अवस्था जिसमें अविद्यामुक्त चित्त आत्मज्योति से प्रकाशित हो जाता है।

उपरोक्त प्रज्ञा की भूमियों में संयम करने से प्रातिभज्ञान की योग्यता प्राप्त होती है। संयम के लिए समाधिसिद्धि की योग्यता चाहिए। समाधि के भी अनेक भेद हैं। चार संप्रज्ञात समाधि हैं, दो असंप्रज्ञात समाधि हैं तथा सातवीं निर्बीज समाधि वितर्कानुगत समाधि ध्येय प्रत्यय स्थूल है तथा वह नाम, रूप तथा अर्थ के साथ अपने समस्त अंग तथा प्रत्यांगों सहित चित्त में प्रकाशित होता है। इस समाधि में ध्येय के कार्यरूप का ज्ञान हो जाता है किन्तु कारणरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। यह सब कैसे होता है इसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह अनुभूति का विषय है। बाह्य जगत में भी स्वाद जैसी अनुभूतियाँ शब्दों में पूर्णरूपेण वर्णन नहीं की जा सकती। सर्वज्ञ महर्षि पतंजलि ने इसका संकेतमात्र दिया है कि –

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु।
तत्स्थतदंजनतासमापत्तिः।।

(योगदर्शन 1/41)

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ।
निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः।।

(योगदर्शन 3/9)

अर्थात् जब ध्येयवृत्ति के अतिरिक्त सभी चित्तवृत्तियों का पूर्ण अभाव हो जाता है अर्थात् चित्त के अन्य वृत्तियों को ग्रहण करने के स्वभाव पर अवरोध का अंकुश लग जाता है, केवल चित्त के संस्काररूप धर्मों में व्युत्थान के संस्कार दब जाते हैं और केवल वृत्तिनिरोध के संस्कार विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार चित्त निरोधसंस्कारों के अनुगत ही प्रकाशित रहता है। इसे चित्त का निरोधपरिणाम कहा गया है। इस अवस्था में चित्त स्फटिक मणि की भाँति पारदर्शी तथा निर्मल होता है। जिस प्रकार स्फटिक मणि में वह सभी चित्र तथा रंग प्रवेश किये हुए से दिखाई देते हैं जोकि उसके सम्पर्क में आने वाले माध्यम में होते हैं, उसी प्रकार निर्मल चित्त में ध्येयवृत्ति का सम्पूर्ण स्वरूप, उसको ग्रहण करने की क्षमता तथा ग्रहीता स्वतः प्रकाशित हो जाते हैं। समाधि से बाहर आने पर संस्काररूपी स्मृति के द्वारा उसका ज्ञान बुद्धि में प्रकाशित रहता है। इसी को ''प्रातिभज्ञान'' कहते हैं। अतः प्रातिभज्ञान के लिए दोनों समाधि की योग्यता तथा निर्मल चित्त की आवश्यकता होती है और तदनन्तर प्रज्ञा की भूमिकाओं तथा योगसिद्धियों में प्रवेश होता है। जब तक ध्येयवृत्ति के नाम, रूप तथा ज्ञान के विकल्प विद्यमान रहते हैं तब तक उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है और जब नाम तथा रूप दोनों की विस्मृति हो जाती है और चित्त ध्ययाकार हो जाता है तब वह असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। यदि ध्येय स्थूल है तब

उसे निर्वितर्क समाधि कहा जाता है और यदि ध्येय सूक्ष्म है तब उसे निर्विचार समाधि कहा जाता है। यदि ध्येय सूक्ष्मविषय है तब ध्येय के शब्दार्थ का ज्ञान कराने वाली समाधि विचारसमाधि कही जाती है। निर्विचारसमाधि में जब ग्रहीता ध्येय की भी विस्मृति कर देता है और केवल आनन्द की अनुभूति करता है तब उसे आनन्दानुगत समाधि कहा जाता है। जब आनन्द की प्रतीति भी लुप्त हो जाती है और केवल ग्रहीता का अहंभाव ही शेष रह जाता है तब यह अस्मितानुगतसमाधि कही जाती है। इन समाधियों की अवस्थाओं से गुजरने के बाद चित्त में ईश्वर का ऐश्वर्य प्रकाशित हो जाता है और योगी अचिन्त्यशक्तिमान हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने इसका संकेत दिया है कि –

निर्माणचित्तानि अस्मितामात्रात्

वहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः

तज्जयात् प्रज्ञालोकः

निर्विचारवैशारद्ये अध्यात्मप्रसादः

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्

तज्जः संस्कारः अन्यसंस्कारप्रतिबन्धी

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधन्निर्वीजः समाधिः

अर्थात् अस्मितानुगत समाधि सिद्ध हो जाने के बाद योगी में चित्तनिर्माण की अद्भुत शक्ति आ जाती है। निर्मित चित्त स्वतः ही प्रकृति से मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राणशक्ति तथा स्थूल शरीर के अवयवों को आकर्षित कर लेता है, क्योंकि यह प्रकृति का स्वभाव है कि निमित्त संकल्प के द्वारा अवरोध हटते ही प्रकृति संकल्पित कार्य को तुरन्त पूर्ण कर देती है। यह सत्य कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसार का प्रत्येक पदार्थ तथा प्रत्येक प्राणी का शरीर प्रकृति का कार्यमात्र है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई अपादान कारण तथा निमित्त कारण है और प्रत्येक कारण किसी अन्य कारण का कार्य है। सम्पूर्ण प्रक्रिया गुणात्मक है, इसीलिए प्रकृति मूलकारण है। शास्त्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि –

ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मनः'' (योगदर्शन 4/13)

ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिः स्वगुणैर्निगूढाम्।

सा कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एका।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः

परिणामैकत्वात् वस्तुतत्वम्

(क्रमशः)

गर्दन पर तलवार

जगदीश राए बंसल 'अधम' 9212434003

जब गर्दन पर तलवार लटकती है – तो सिद्ध गुफा पर आता हूँ।
गुरु चन्द्र मोहन को दुखड़ा सुनाकर – चरणों में आंसु बहाता हूँ।।

दुनियाँ में योगी हजारों हैं, पर गुरु चन्द्रमोहन सा योगी नहीं
इनके सिद्ध योग सा योग नहीं, और सिद्ध गुफा सा संयोग नहीं
दोनों हाथों खुशीयाँ लुटाते – मैं झोली भर ले जाता हूँ।
जब गर्दन पर .... (1)

ये सृष्टि के रचने वाले गुरु जी – रसीला जादू करते हैं
हैं योग योगेश्वर राम कृष्ण – दिव्य दृष्टि वाले कहते हैं
मेरे अन्धियारे दिल में दीप जलाते – मैं सपने में भी हंसता हूँ।
जब गर्दन पर .... (2)

हैं अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता – वर लूटा रहे भाग्य विधाता
मुख मण्डल पर तेज चमकता – गुरु दर्शन से गुरु का हो जाता
रूद्रा हैं मेरे अमृत के सागर – मैं गोते लगाने आता हूँ।
जब गर्दन पर .... (3)

गुरु भक्ति का अंकुर फूट पड़े तो – मैं गुरु महिमा में खो जाऊँ
जो कभी मुझे निद्रा सतावे तो गुरु गोदी में सो जाऊँ
सिद्धेश्वर जी की थपकी से – व्याधी अधम मिटाता हूँ।
जब गर्दन पर .... (4)

श्री सद्‌गुरुदेव जी की कृपा

श्याम मनोहर श्रीवास्तव

जैसा कि मैंने माह मई 2016 के सिद्धयोग में " श्री सद्‌गुरु देव जी की कृपा " में वर्णन किया था कि प्रभूजी की कृपा मात्र से मेरा कैंसर रोग समाप्त हो गया है यही सब जानकारी देने व श्री सिद्धगुफा संवाई धाम तथा श्री सद्‌गुरुदेव जी के दर्शनार्थ श्री सिद्धगुफा संवाई जाने का प्रोग्राम होली महोत्सव पर दिनांक 22–3–16 को बनाया। ललितपुर से मैं स्वयं मेरे पुत्र नितिन श्रीवास्तव पुत्र बधू बीना श्रीवास्तव तथा मेरे दोनों नाती बड़ा गोपाल जी उम्र 8 वर्ष तथा दूसरा छोटा उम्र एक वर्ष राघव जी, मोंठ जिला झाँसी से मेरे बड़े दामाद श्री विश्व प्रकाश श्रीवास्तव बड़ी लड़की श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव नातिन श्रुति एवं दिव्यंशी तथा ग्वालियर से छोटे दामाद श्री राजीव श्रीवास्तव छोटी लड़की श्रीमती शिखा श्रीवास्तव एवं नातिन राशि एवं रेशु को जाना था। मेरी माँ श्रीमती शान्ती देवी जिनकी उम्र 94 वर्ष है जो कमजोर होने के कारण आश्रम नहीं जा सकती थी उनकी देख भाल हेतु मेरी पत्नि श्रीमती उमा देवी आश्रम नहीं जा सकती थी अन्य सभी लोगों का प्रोग्राम अपने निजी वाहन (चारपहिया) से बना। बड़ी लड़की व दामाद बच्चों सहित दिनांक 22–3–16 को प्रातः ग्वालियर पहुँच गये। ग्वालियर में छोटी लड़की के यहाँ आश्रम जाने वाले सब इकठ्ठे हो गये।

दिनांक 22–3–16 को ललितपुर से प्रातः 8 बजे मैं अपने पुत्र, पुत्र वधू एवं दोनों नातियों के साथ अपने निजी वाहन (कार) द्वारा श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम के लिए निकल दिये। पुत्र नितिन श्रीवास्तव कार ड्राइवकर रहे थे। मैं आगे की सीट पर बैठा था तथा पुत्र बहू व दोनों नाती पीछे की सीट पर बैठे थे। करीब 9.30 बजे प्रातः झाँसी में अपने बड़े भाई श्री सी.पी. श्रीवास्तव जो रेलवे से इंजीनियर पद से सेवा निवृत्त हो चुके थे उनके घर पहुँचा तथा आश्रम चलने को कहा। वह अस्वस्थ थे इसलिए जाने के लिए मना कर दिया। करीब 10 बजे प्रातः हम लोग झाँसी से ग्वालियर और आगरा आश्रम के लिए चल दिये। झाँसी से कुछ ही दूर चले थे कि झाँसी और दतिया के बीच पड़ने वाले ग्राम अम्बावाय जहाँ सिमित रोड है झाडियों से एक गाय बड़ी तेजी से भागती आई और मेरी कार के दाहिनी अगले हिस्से से बड़ी जोर से टकराई और कार की बोनट पर गिरी तथा गाय के पैर साइड वाले कांच में लगे कांच टूट गया। कार एक दम रुक गई। कार का अगला हिस्सा, बोनट, हैड लाइट, आगे का कांच, साइड का कांच टूट कर कार के अन्दर गिरे गाय के सींग कांच में लगने के कारण टूट गये तथा कांच भी टूट गया। बोनट पर खून लग गया था। गाय इतनी जोर से टकराई कि उसके पैर में चोट लग गई वह उठ नहीं पा रही थी। कार में पीछे की सीट पर बैठी पुत्र बहू जोर से चिल्लाने लगी। मैं जैसा बैठा था वैसा ही

बैठा रहा। पुत्र नितिन से पूछा उसने बताया वह ठीक है। बच्चे सो रहे थे जाग गये। मैंने कहा सभी शान्त रहो प्रभूजी की कृपा से किसी का कुछ नहीं बिगड़ेगा। कार का अगला हिस्सा बोनट आदि पूरी तरह से ध्वस्त हो गया था। सामने तथा साइड का कांच टूट गया था। नितिन ने कार से वहाँ उतरना सही नहीं समझा और कार स्टार्ट करके आगे करीब–करीब 2 कि.मी. पर खड़ी की तथा पूरी कार को देखा, कार में लगे खून आदि को साफ किया। इतने में दो तीन मोटर साइकिलों पर गाँव के पाँच छः लोग आ गये और कहने लगे गाय खड़ी नहीं हो पा रही है उसका पैर टूट गया इलाज कराओ, मैंने कहा इसमें हम लोगों की क्या गलती है गाय भाग कर आई और टकरा गई। हम लोग खुद मरते मरते बचे तथा कार का अगला हिस्सा भी मिट गया। इस पर वह पुलिस की धमकी देने लगे। नितिन ने समझाया कि गौ माता का घायल हो जाने का हम लोगों को भी दुख है तथा कहा बताओ क्या करना है और गाय के इलाज हेतु 500/– रु का नोट दिया वह लोग मान गये और वापिस चले गये।

यह सब हो जाने के बाद नितिन ने कहा पापा अब घर लौट चलो। कार ठीक होने झांसी में डाल देंगे और ट्रेन से ललितपुर चले चलेगें। इस पर मैंने कहा नहीं श्री सिद्धगुफा सवांई और श्री सद्गुरुदेव के दर्शन करने अवश्य ही जायेंगे। कार को इसी स्थिति में ग्वालियर ले चलो। ग्वालियर कार ठीक होने एजेन्सी पर डाल देंगे और छोटी लड़की के जो दो कारें आल्टो और बुलोरे है उनसे हम लोग श्री सिद्धगुफा सवांई धाम चलेंगे। एक्सीडेन्ट की सूचना ग्वालियर छोटी लड़की को कर दी थी तथा बता दिया था कि श्री प्रभूजी की कृपा से सुरक्षित हैं। किसी का बाल बाका भी नही हुआ।

ग्वालियर पहुँच कर मेरा पुत्र नितिन एवं छोटे दामाद राजीव कार ठीक कराने के लिए एजेन्सी पर डाल कर आ गये। करीब 5 बजे शाम हम दोनों वाहनों से करीब 12 लोग बच्चों सहित आश्रम के लिए रवाना हुए। रात्रि में हम लोग श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पहुँचे वहाँ श्री प्रभूजी की आरती हो रही थी। हम सभी लोग आरती में शामिल हो गये। आरती के बाद आ. आचार्य डॉ. दासलाल जी ने प्रसाद वितरण किया। जब प्रसाद वितरण हो चुका तो मैंने आ. डॉ. दासलाल जी से एक्सीडेन्ट सम्बन्धी सारी घटना बताई तथा श्री प्रभूजी ने किस प्रकार कृपा की बतलाया। ठहरने की व्यवस्था हेतु निवेदन किया। प्रसाद (भोजन) पाने की घंटी बज चुकी थी। भाई जी ने कहा पहले प्रसाद पालो बाद में व्यवस्था हो जायेगी।

प्रसाद पाने के बाद आचार्य डॉ. दासलाल जी से पुनः ठहरने की व्यवस्था हेतु निवेदन किया। ऊपर के एक बड़े हॉल में सबके ठहरने की व्यवस्था हुई। रात्रि में विश्राम किया।

प्रातः आश्रम में जो कार्यक्रम होते थे उसी के अनुसार प्रातः उठकर कार्यक्रमों में भाग लिया। हम लोग अपने घरों से भजनों की डायरिया जो झाँसी के भाई पू. स्व. ईश्वरी प्रसाद खडडर (बाबा) द्वारा लिखी गई थी साथ ले गये थे। मेरी पुत्रियाँ जो आश्रम गई थीं गाने बजाने में

बहुत होशियार थीं उसका कारण यह था कि जब वह पैदा भी नहीं हुई थी सन् 1975 से मेरे घर प्रत्येक रविवार को सत्संग (भजन) होते हैं। तथा श्री सद्गुरुदेव भगवान तथा श्री महाप्रभूजी का दरबार लगा हुआ है। सत्संग भी होते हैं। सन् 1975 में सत्संग शुरू कराने झाँसी के पू. स्व. श्री ईश्वरी प्रसाद खड्ड़र (बाबा) जी, श्री कृष्ण कान्त झा, श्री रामदास जैन भाई एवं बहन श्रीमती आशा दुबे आदि आये थे। तब से अभी तक ललितपुर में मेरे घर प्रत्येक रविवार को सत्संग हो रहा है। इसी सत्संग में मेरी लड़कियों ने सब सीखा और आश्रम में सबने मिलकर खूब भजन गाये।

भोजन परसादी की घंटी बजी तथा सबने भोजन प्रसाद पाया। उसके उपरान्त आ. आचार्य डॉ. दासलाल जी से आज्ञा का प्रसाद लिया और गाड़ियों में सामान रखकर श्री सद्गुरुदेव, महाप्रभूजी श्रीरामलाल जी, श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री सिद्धगुफा संवाई धाम एवं श्री सच्चे दरबार की जय का जयकारा लगाकर हम लोगों ने अपने घर के लिए प्रस्थान किया।

मेरे परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों पर श्री सद्गुरु देव भगवान एवं श्री महाप्रभू रामलाल जी की असीम कृपा है। प्रभू ऐसी ही कृपा बनाये रखें।

आचार्य श्री दासलाल जी का आगामी कार्यक्रम इस प्रकार है।

- 7 से 9 नवम्बर - ठक्कर बापा इंटर कॉलेज, कालपी-जिला. जालौन
- 25 नवम्बर से 27 नवम्बर - महाप्रभु रामलाल योगाश्रम, जी.टी. रोड-घरौण्डा, जिला-करनाल, हरियाणा
- 4 दिसम्बर से 6 दिसम्बर - श्री चन्दन सिंह बाबू की कोठी, बस अड्डे के सामने, दतिया (मध्य प्रदेश)
- 7 दिसम्बर से 8 दिसम्बर - C/O प्रदीप द्विवेदी मकान नं. : 1, कृष्णा कॉलोनी, भिण्ड रोड़, ग्वालियर
- 28 दिसम्बर से 1 जनवरी 2017 - गंगापुर सिटी, नृसिंह कॉलोनी, गंगापुर, संवाई माधोपुर (राजस्थान)

योग-आसन

पादहस्तासन

विधि– समभाव से सीधे खड़े हो जायें व अपने दोनों हाथों को पीठ की ओर से घुमाकर आगे की ओर नीचे को झुकाते लायें व धीरे–धीरे अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ लीजिये, किन्तु पैर यत्किंचित भी झुकने न पायें। पीठ झुककर गोलाकार बन गई हो व शिर दोनों हाथों के बीच आ गया हो। इसी को पादहस्तासन कहते हैं। निरन्तर के अभ्यासी लोग इसे खड़े होकर करते हैं।

श्री सूर्य से स्वास्थ्य–लाभ

डॉ. श्री सुरेन्द्रप्रसाद जी गर्ग

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भगवान हैं। हमें उनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। उनके दर्शन के लिये भावना की वैसी कोई आवश्यकता नहीं है जैसी अन्य देवों के लिए अपेक्षित होती है। अतः सूर्यदेव की प्रत्यक्ष आराधना की जा सकती है।

सौरपुराणों में भगवान् सूर्य की अलौकिक सम्पदाओं शक्तियों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सूर्य मण्डल में प्रवेश करके ही जीव ब्रह्मलोक अर्थात् भगवान् का सानिंध प्राप्त कर सकता है। वस्तुतः सूर्य नारायण की आराधना किये बिना बुद्धि प्रखर नही होती। सूर्यनारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में –

' ज्योतिषां रविरंशुमान '

कहा है। धर्मराज युधिष्ठर सूर्य की उपासना करते थे और सूर्यदवे ने उन्हें एक अक्षय पात्र दिया था। भगवान् राम भी सूर्योपासक थे। ऋगवेद में सूर्य की उपासना के कई मन्त्र हैं और भगवान् आदित्य से अनेक प्रकार से प्रार्थना की गयी है। लिखा है –

' आरोग्यं भास्करादिच्छेन्मोक्षमिच्छे ज्जनार्दनात्। '

आधुनिक चिकित्सा शास्त्रियों ने सूर्य की स्वास्थ्यदायिनी शक्ति को भली–भाँति समझा और अनुभव किया है। सूर्य–किरण–चिकित्सा पर देशी–विदेशी चिकित्सकों ने कई ग्रन्थ लिखे हैं। एक अंग्रेजी कहावत है – (Light is Life and darkness is Death)' लाइट इज लाइफ एन्ड डार्कनेस इज डैथ 'अर्थात् – प्रकाश ही जीवन है और अन्धकार ही मृत्यु है। जहाँ सूर्य की किरणें अथवा प्रकाश पहुँचाता है, वहाँ रोग के कीटाणु स्वतः मर जाते हैं और रोगों का जन्म नहीं होता। सूर्य अपनी किरणों द्वारा अनेक प्रकार के आवश्यक तत्वों की वर्षा करते हैं और उन तत्वों को शरीर द्वारा ग्रहण करने से असाध्य रोग भी दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने चिकित्सा की दृष्टि से सूर्य का अनेक प्रकार से प्रयोग किया है। शास्त्र कहते हैं कि सूर्य के प्रकाश में सप्तरश्मियाँ– लाल, हरी, पीली, नीली, नारङ्गी , आसमानी और कासमी रंग– विद्यमान है एवं सूर्य–प्रकाश के साथ इन रंगों तथा तत्वों की भी हमारे ऊपर वर्षा होती है। उनके द्वारा प्राणी तथा वानस्पतिक वर्ग को नवजीवन एवं नव चैतन्य प्राप्त होता रहता है। यह कहने में कि यदि सूर्य न होते तो हम जीवित न रह सकते थे – कोई अत्युक्ति नहीं है। यही कारण है कि वेदों में सूर्य–पूजा का विधान तथा महत्त्व है और हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने सूर्य से शक्ति प्राप्त कर प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने का आदेश किया है। आदिकाल के ग्रीक और यूनानी लोगों ने सूर्य–चिकित्सालय बनवाने के साथ – साथ सूर्य की पूजा की है। पाश्चात्य चिकित्सा–विज्ञान का प्रथम उपासक हिप्रोकेट्स भी सूर्य द्वारा रोगियों को ठीक करता था।

धीरे–धीरे अवनति के गर्त में पड़ते हुए संसार ने सूर्य के महत्व को अपने मस्तिष्क से भुला दिया। फलस्वरूप सैकड़ों रोगों की, जिनका पहले नामोनिशान न था, जन्म दे दिया। वैज्ञानिकों के

निरन्तर प्रयत्नशील रहने तथा अनुसन्धान और अन्वेषण करते रहने पर भी वे संसार को रोगों से मुक्त न कर सके और अन्त में विवश हो प्रकृति की ओर लौटे। कुछेक ने सूर्य के महत्व को समझा और सूर्य ऊर्जा आदि का पता लगाया। सर्व प्रथम डेनमार्क के निवासी डॉ. नाइस फिसेन ने 1293 ई. में सूर्य–प्रकाश के महत्त्व को प्रकटकर 1295 में सूर्य द्वारा एक क्षय के रोगी को स्वस्थ्य किया। किन्तु आपकी तेतालीस वर्ष की अवस्था में ही असामयिक मृत्यु हो गयी। दूसरे वैज्ञानिकों को इतने से सन्तोष न हुआ। उन्होंने नयी–नयी खोजें प्रारम्भ कीं। इसके फलस्वरूप चिकित्सा संसार में सूर्य चिकित्सा अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने लगी है। डॉ. ए.जी. हार्वे, डॉ. एलफ्रेड बरोलियर आदि ने बड़े–बड़े सेनेटोरियम स्थापित किये। सन् 1903 से डॉ. रोलियर अपनी पद्धतियों (System) द्वारा आल्पसपर्वत पर लेसीन नामक प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित स्थान में रोगियों की चिकित्सा करते हैं और नैसर्गिक सूर्य–प्रकाश को काम में लाते हैं। (श्रीमती कमला नेहरू शायद यहीं अपनी चिकित्सा के लिए गयी थीं।) डॉ. रोलियर का तरीका अपने ढंग का अकेला है और ये सहिष्णुता तथा पृथक्ता (एकलीमेटीसेशन तथा आइसोलेशन) आदि विधियों द्वारा चिकित्सा करते हैं। इसका पूर्ण उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता। इसके बाद 'क्रोमोपैथी ' (chromopathy) का जन्म हुआ और वैज्ञानिकों ने बतलाया कि शरीर में किसी विशेष रंग की कमी के कारण भी विशेष रोग उत्पन्न हो सकते हैं और उसी रंग की बोतल में तैयार किया जल पिलाने तथा शरीर पर प्रकाश डालने से वे रोग दूर हो सकते हैं। इस विषय के डॉ. आर.डी. स्टकर, डॉ. ए.ओ. ईव्स, डॉ. वेविट आदि ज्ञाता हुए हैं। यह चिकित्सा–पद्धति बड़ी उपयोगी और भारत–जैसे गरीब देश के लिए अत्यावश्यक है। पर इसमें कठिनाई केवल इतनी ही है कि (chromopathy) द्वारा एक सद्वैद्य ही जो रोगनिदान में निपुण है, रोगियों को लाभ पहुँचा सकता है। ठीक निदान न होने पर हानि हो सकती है।

जटिल एवं तथोक्त असाध्य रोगों – जैसे क्षय, लकड़ा, पोलियों, कैन्सर आदि में भी विधिवत् सूर्य–स्नान करने से अद्‌भुत लाभ होता है। और रोगों को दूर भगाने में विशेषज्ञों से परामर्श कर लेना वांछनीय है। कई बार स्थानीय रूप में भी सूर्य की किरणों का प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात् शरीर के किसी एक अंगविशेष को कुछ समय के लिए धूप में रखा जाता है।

सूर्य–किरण–चिकित्सा–प्रणाली के अनुसार रंगों के अलग – अलग गुण होते हैं ; उदाहरणार्थ लाल रंग उत्तेजना और नीला रंग शान्ति पैदा करता है। इन रंगों से लाभ उठाने के लिए रंग बोतलों में छः या आठ घंटे तक धूप में लकड़ी के पाटों पर सफेद कांच की बोतलों में आधा–आधा कुए या नदी का शुद्ध जल भर कर रखा जाता है। फलस्वरूप इस जल में रंग के गुण उत्पन्न हो जाते हैं और फिर उस जल की दो–दो तोले की खुराक दिन में तीन–चार बार ली जाती है। पर बोतलों को जमीन पर अथवा अन्य प्रकार के किसी प्रकाश में नहीं रखना चाहिए। एक दिन का तैयार किया जल तीन दिन तक काम दे सकता है। जल की भाँति तैल भी लगभग एक महीने तक धूप में रखकर तैयार किया जाता है। यह तैल पर्याप्त गुणकारी होता है।

सूर्य–रश्मिों से लाभ उठाने की एक निरापद् एवं हानिरहित विधि यह है कि श्वेतवर्ण बोतल में जल तैयार करके उसका सेवन किया जाए।

दैनिक सूर्यस्नान–स्वास्थ्य इच्छुकों को प्रतिदिन करना चाहिए इसकी विधि यह है कि सुहाती–सुहाती धूप में अपने सम्पूर्ण शरीर को शक्ति, रुचि एवं ऋतु के अनुसार नंगा रखा जाए। शरीर के

प्रत्येक अङ्ग–प्रत्यङ्ग पर सूर्य की किरणें पड़ें। यदि असहनीय हो तो सिर को श्वेत गीले वस्त्र से तथा शरीर के अन्य भागों को सात्त्विक वृक्षों – जैसे केले, जामुन, आम के पत्तों से ढका जा सकता है। शरीर को धूप में रखने से पसीना आता है। यद्यपि यह एक प्रकार का विष है, यद्यपि पसीने में ही ठण्डे जल से रगड़–रगड़ कर स्नान करना अत्यन्त सुखदायक एवं लाभकारी होता है। इस प्रकार पसीने में स्नान करना कभी कोई हानि नहीं करता। जर्मन के प्रसिद्ध जल–चिकित्सक डॉ. लुईकूने ने वाष्प स्नान के ठीक पश्चात् ठण्डे जल से स्नान करने की परिपाटी डाली थी। इस पद्धति के द्वारा हजारों रोगी स्वास्थ्य–लाभ कर चुके हैं और कर रहे हैं।

सूर्य – स्नान करने में ऋतु के अनुसार समय एवं अवधि का भी ध्यान रखना चाहिए। ग्रीष्मकाल में प्रातः 8 बजे तक और सायं 4 बजे के पश्चात् एवं शरदऋतु में किसी भी समय सूर्य–स्नान किया जा सकता है। इसकी अवधि 15 से 30 मिनट तक रखी जानी चाहिए।

सूर्य–नमस्कार–व्यायाम–स्वास्थ्य की वृष्टि से दैनिक त्रिकाल संध्याओं का अत्यन्त महत्व है। प्राणायाम भी संध्योपासना का अङ्ग है। प्राणायाम से शरीर का दूषित रक्त शुद्ध होकर अनेक रोगों से शरीर की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त सूर्य की प्रार्थना एवं उनके ध्यान से बुद्धि का परिमार्जन होकर सद्विवेक जागृत होता है और मनुष्य पाप–कर्मो से सहज ही बच जाता है।

आधुनिक विद्वानों ने सूर्यनमस्कार–प्राणायाम पद्धति का भी उद्भव किया है। इस सम्बन्ध में 'लीडर प्रेस' इलाहाबाद द्वारा 'सूर्य–नमस्कार' नामक पुस्तक अत्यन्त प्रामाणिक, अनुभवपूर्ण असंगतियों से शून्य एवं ज्ञानवर्धक है। विद्वान एवं अनुभवी लेखक ने विषय का वैज्ञानिक रीति से विवेचन करके 'सूर्यनमस्कार प्राणायाम–पद्धति का प्रचार किया है। इस पद्धति में शरीर के विभिन्न अंगों को दस अवस्थाओं में रखने, साथ में श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया करते हुए मन ही मन मुख को बिना खोले मन्त्रोच्चारण करने का विधान है। इनमें 24 मन्त्र हैं, इन्हें पढ़ते हुए प्रतिदिन प्रातः स्नान करके सूर्याभिमुख होकर विधिपूर्वक नमस्कार करना चाहिए। यह नमस्कार एक से आरम्भ करके कम से कम 24 बार तक किया जाए। इनके अभ्यास से शरीर स्वस्थ, बलिष्ठ, निरोग तथा दीर्घजीवी होता है। साथ ही साथ आहार–विहार के अन्य सामान्य नियमों का भी पालन उचित है।

भ्रान्तियाँ– धूप अथवा सूर्य के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ भी फैली हैं। वस्तुतः धूप कभी कोई हानि नहीं करती, तथापि भरपेट भोजन के पश्चात् कड़ी धूप में जाना वर्जित है। खाली पेट धूप में घूमने से कभी कोई हानि नहीं होती। हमारे ग्रामों में आज भी वहाँ के निवासी चिल–चिलाती धूप एवं गर्म लू में रहते हैं। और वे नगर के कृत्रिम जीवन के आदी नागरिकों की भाँति धूप एवं लू के शिकार नहीं बनते।

सूर्य की किरणों द्वारा पके फलों, सब्जियों तथा खाद्यान्नों में एक विशेष प्रकार का रस पैदा होता है और वे अनेक प्रकार के खाद्यों से भरपूर हो जाते हैं। जिन पेड़–पौधों को सूर्य–किरणें नहीं मिलतीं, वे मर जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सूर्य की किरणें प्राण का संचार करती हैं और उनकी सहायता से भयंकर–से–भयंकर रोग सहज ही बिना किसी व्यय के दूर किये जा सकते हैं।

कलि मल प्रभाव

कृष्ण कुमार पांडेय, गोरखपुर

भारतीय जन मानस का मध्यकाल बड़ा उथल पुथल का काल रहा। क्योंकि मुगलों का प्रभाव उस समय बढ़ गया था। समाज में विसंगतियां व्याप्त हो रही थी। इन विसंगतियों से संतों ने समाज को बचाया। संतों ने कहा– भाईयों लोभ, एवं भ्रम में पड़कर आप सद्मार्ग से वंचित हो जायेंगे। इसकी दुर्गति भी झेलनी होगी। यह कलिका मल विचारों को प्रभावित करके न्याय एवं अन्याय की परख ही समाप्त हो जायेगी। समाज विश्रृंखल हो जायेगा। आपसी वैमनस्यता एवं ईर्ष्या मन को अशान्त कर देगी। किन्तु सद्मार्ग एवं सद्विचार से हम भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों सुख उठा पायेगें। सद्गुरु से प्राप्त उपदेश रूपी पतवार को पकड़कर जीवन के बहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर जीवन को सरलता एवं सहजता से भोगा जा सकेगा। हमारी वृत्तियाँ और कर्मसंस्कार ही हमें असद्मार्ग की ओर प्रेरित करती है। कलिमल से ग्रसित व्यक्ति के बारे में बताते हुए संत शिरोमणि तुलसीदासजी ने लिखा–

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रंथ।
दभिन्ह निजमति कल्पिकरि प्रगट किये बहुपंथ।।

अर्थात् कलियुग के पाप ने हमारे सद्ग्रंथों को ग्रस लिया वे लुप्त हो गये। दम्भियों ने विभिन्न प्रकार की कल्पना करके अपने मत के अनुसार विभिन्न प्रकार के पंथों को प्रकट कर दिया है। जिससे समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न हो गयी है। आगे और कहा कि –

भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि कहऊँ कछुक कलि धर्म।।

अर्थात् कलिमल से लोग मोह के वश में हो गये, लोभ के कारण शुभ कर्म समाप्त प्राय होने को हैं। इसलिए हे ज्ञान के भण्डार हरि के वाहन (गरुण) जी मैंकलि धर्म के बारे में चर्चा करने जा रहा हूँ। आप उसे ध्यान से सुनें। अवजरा यही बात पातंजलि के योग में देखे पुनः आयेंगे।

भगवान पतंजलि ने अपने दर्शन में बताया है कि –

" अविद्यास्मिता राग द्वेषाभि निवेशाः क्लेशः "

अर्थात् अविद्या (अज्ञानता) अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (मृत्युभय) से जीव संसार चक्र में घूमता रहता है। भगवान पतंजलि ने इसे क्लेश कहा है। वस्तुतः ये भी कलिमल ही है।

कलिमल का प्रभाव यत्र–तत्र सर्वत्र है। यह मल वर्ण धर्म, एवं चारों आश्रमों में विद्यमान है। मात्र स्वरुप का अन्तर दिखायी देता है। यह अन्तर भी आस्था विशेष के अनुसार दृष्टिगत होता है। इसी के प्रभाव से विसंगतियों के पनपने के अवसर सहज ही प्राप्त होते हैं। जिसको जो अच्छा लगता

है वही करने लगता एवं उसी को वह अपना धर्म मान लेता है। वह दूसरों को भी करने के लिए प्रेरित करता है। कदाचित असावधानीवस व्यक्ति प्रभाव में आ जाता है। यद्यपि कि इस कलिकाल में भी साधकों एवं सिद्ध संतों की कमी नहीं है। लेकिन हाय रे कलियुग का कलिमल तूने अपना प्रभाव कहाँ नहीं छोड़ा है। भक्त शिरोमणि, तुलसीदास के बारे में किवदन्ती सब लोग जानते हैं जो युगधर्म में बच गये। क्योंकि भगवान को तो इनसे कुछ खास कार्य कराना था। अथवा यह कहा जाए कि इनके शुभ कर्म अचानक प्रकट हो गये। जिसका परिणाम " **रामचरितमानस** " रूपी नवनीत प्रकट हुआ। कलिमल के प्रभाव को बताते हुए तुलसीदास ने कहा कि –

सब नर काम लोभ रत क्रोधी।

देव विप्रश्रुति संत विरोधी।।

गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी।

भजहिनारि पर पुरुष अभागी।।

अर्थात् सभी व्यक्ति काम क्रोध तथा लोभ रूपी कलिमल से ग्रसित होकर देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के विरोधी होगें। कलिमल से ग्रसित स्त्रियाँ गुणों के धाम अपने सुन्दर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करने वाली होगी। यद्यपि अभी कलि का प्रथम चरण चल रहा है। विकृतियाँ तो दिख रही हैं। लेकिन अभी संतों का प्रभाव इस धराधाम पर है।

वर्ण धर्म पर कलिमल के प्रभाव को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

जे वरनाधम तेलि कुम्हारा।

स्वपच किरात कोल कलवारा।।

नारिमुई गृहसंपति नासी।

मूड मुडाई होहि संन्यासी।।

अर्थात् अधम वर्ण के लोग स्त्रियों के मरने पर, सम्पत्ति के नष्ट हो जाने पर सिर मुड़ाकर संन्यासी का वेश धारण करके, अपनी पूजा बड़ों से करवायेगें। बड़े लोग भी निपढ़, लोभी, आचारहीन, कामी तथा मूर्ख होगें। उन्हें अपने धर्म की मर्यादा का ख्याल भी नहीं रहेगा। जिससे सामाजिक मर्यादाएँ स्वाभाविक रूप से गिरती हुई दिखेगी। जिससे असमानता का ही साम्राज्य होगा। भक्त शिरोमणि ने और भी कहा है कि –

" श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत विरति विवेक।

तेहि न चलहिं नर मोह वस कल्पहि पंथ अनेक।। "

अर्थात् कलिमल ग्रसित व्यक्ति वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त हरि के भक्ति का मार्ग त्याग देंगे। मोह एवं अज्ञानता के कारण ऐसे सद्मार्ग के बदले अपने अनुसार नये–नये पंथों की कल्पना करते फिरेंगे जहाँ उन्हें सुख और संतोष नहीं प्राप्त हो सकेगा। राजा तथा प्रजातंत्र के प्रमुख पाप कर्म को करते हुए सबको कष्ट देगें।

संत शिरोमणि तुलसी दास जी ने काक भुशुण्डि तथा गरुण संवाद के माध्यम से कलि के मल का विस्तृत वर्णन अपने मानस के उत्तर काण्ड में किया है। पुनः संवाद के ही माध्यम से कलियुग के कलिमल को और विस्तार देते हुए कहा कि –

सुनु खगेश कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखण्ड।

मानभोद मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मंड।।

तामस धर्म करहि नर जप तप व्रत मखदान।

देव न वरषहि धरनी बए न जामहिधान।।

काकभुशुण्डि जी गरुड जी से कहते हैं कि – हे पक्षिराज कलियुग में कपट, हठ, दम्भ, द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह काम और मद सर्वत्र व्याप्त रहेगा। व्यक्ति तामसी भाव से यज्ञ, तप, व्रत करेंगे। जिसका प्रभाव स्थायी नहीं बल्कि क्षणिक होगा। आवश्यकतानुसार वृष्टि नहीं होगी। यही नहीं पृथ्वी में बोया हुआ अन्न भी नहीं जमेगा। कलिमल का दुष्प्रभाव समाज में व्याप्त होगा। कलिमल का ही प्रभाव होगा कि सभी लोग भिक्षा माँगने वाले हो जायेंगे। वर्णाश्रम के धर्म में विभिन्न प्रकार के विभेद पैदा हो जायेंगे। जिससे विषमता बढ़ेगी। फिर भी इस विषमता में कुछ समता भी होगी। वह समता है – " **मानस पुण्य होहि नहीं पापा** " अर्थात् कलियुग में मानसिक पुण्य का प्रभाव अधिक होगा। लेकिन मानसिक पाप निष्प्रभावी दिखेगा। कलिमल को शान्त करने का एक बड़ा भारी अस्त्र राम नाम के गुणगान का होगा। जिसके साधक संसार साधक से आसानी से पार हो सकता है। धर्म को चार रूपों में दान की प्रधानता होगी। व्यक्ति जिस तिस प्रकार से दान देकर आत्म कल्याण कर सकता है।

वस्तुतः ईश्वर की माया जिससे सृष्टि का सृजन होता है। वह माया रूपी अज्ञानता भजन से ही दूर हो सकता है। इसलिए सकाम, निष्काम किसी भी प्रकार से गुरुपदिष्ट मंत्र के जप एवं उपदेश ही साधक को कल्याण पथ का पथिक बना सकता है। इस दृश्य जगत में असम्भव कुछ भी नहीं है। आवश्यकता उसको कार्य रूप में परिणत करने की होती है। सद्गुरु का आशीर्वचन व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाकर लक्ष्य के करीब उपस्थित कर देगा। इसलिए साधक को आलस्य एवं प्रमाद त्याग कर साधन में लग जाने की आवश्यकता है।

पूर्णत्व की पहली सीढ़ी – शुचिता

सुश्री नलिनी शर्मा

शुचिता या स्वच्छता मानव के विकास के लिए आवश्यक गुण है ऐसा गुण जो जीवन के सभी क्षेत्रों में आवश्यक है। आध्यात्मिक साधना में भी स्वच्छता आवश्यक है। " **शुचित्वात् आत्मदर्शन योग्यत्वम्** " हमारे दार्शनिकों और ऋषि मुनियों ने इसका अनुभव किया है।

श्री भगवद् गीता में कुछ विशेष स्थानों पर इस स्वच्छता का उल्लेख आता है –

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य, स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छितं नातिनीच, चैलाजिन कुशोत्तरम।।

पवित्र स्थान देखकर स्थिर आसन बिछाया जाये। दर्भ और उस पर ही वस्त्र। जो न बहुत ऊँचा हो न बहुत नीचा हो

– गीताई

अनुवाद

पवित्र – स्वच्छ, निर्मल, जहाँ के सहचारी भाव पावन हो, वह (स्थान) " पवित्र स्थान देखकर " – हर एक घर में ध्यान, भक्ति और विकार–मुक्ति का स्थान होना चाहिए। उपनिषदों की यह आज्ञा ही है

" कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानः "

– गीताई

चिन्तनिका

मन की एकाग्रता साधने के लिए मन की शांति व समाधान प्राप्त करने के लिए चित्त की शुद्धि के लिए चित्त वृत्तियों का निरोध करना चाहिये। इसके लिए रोज सातत्यपूर्वक नियमित प्रयत्न होना चाहिए। रोज स्वाध्याय , अध्ययन, चिन्तन, ध्यान या प्रार्थना, जो भी प्रयत्न हम करेंगे वह किस पद्धति से करे, इसका मार्ग–दर्शन गीता के छठे अध्याय में आया है। उसमें बैठने का स्थान कैसा होना चाहिए इसका विवेचन प्रारम्भ में ही किया गया है। वह स्थान ऐसा पवित्र होना चाहिए जिसमें चित्त विचलित न हों बल्कि प्रसन्न रहे। स्थान का कोना–कोना अत्यन्त स्वच्छ हो। बल्कि आसपास जो भी चीजें, सामान हो, वह व्यवस्थित करके रखा गया हो। कही भी अव्यवस्थित होनें का दर्शन न हो।

बैठनें के लिए आसन कैसा हो ? सादा परम् स्वच्छ और ऐसा जो शरीर को न तकलीफ देह हो न सुख देह आसपास ऐसी चीजें न हों जिनका चित्त पर विपरीत असर पड़े। एकांत हो। अर्थात् बाह्य स्वच्छता के साथ ही आंतरिक स्वच्छता का भी ख्याल रखकर अभ्यास के लिए बैठे।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा, शाश्वतीः समाः।

शुचीना श्रीमतां गेहे, योगभ्रष्टोऽभिजायते।।

अर्थ– वह योगभ्रष्ट पवित्र लोक में दीर्घकाल रहकर शुचि और साधन सम्पन्न (की सुविधा वाले) कुटुम्ब में जन्म लेता है।

पुण्यात्मा, महात्मा शुचि–साधन–सम्पन्न पवित्र नीतिमान लोगों के चारित्र्यशीलों के घर में जन्म लेता है। जिनका जीवन चारित्र्य सम्पन्न शीलसम्पन्न निर्मल है वे ही शुचि साधन सम्पन्न होते हैं। जो नीति पथ पर चलते हैं जिनकी जीविका शुद्ध मार्ग से प्राप्त होती है। जिनकी वाणी सत्य से स्नात, स्वच्छ बनी है। क्योंकि वे हर छोटी–मोटी बात की तरफ शास्त्र–दृष्टि से देखतें हैं जिनका आहारादि स्वच्छ है, ऐसें शुद्ध निर्मल लोगों के घर महात्मा जन्म लेते हैं। इस चारित्र्य सम्पन्न व्यवहार में शुद्ध मनुष्य का निवास किस किस्म के घर में होता होगा ? स्पष्ट ही है उनकी आंतरिक स्वच्छता का प्रतिबिम्ब उसके घर आँगन में अंकित हुआ होगा। गन्दे, अव्यवस्थित, अस्वच्छ घर में महात्मा, पुण्यात्मा जन्म कैसे लेगा ?

अन पेक्ष : शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः।
सवरिंभपरित्यागीयो, मद्भक्तः स में प्रियः। –गीता

अनुवाद– व्यथा को जानता नहीं, उदासीन, दक्ष (सावधान) निर्मल जिसनें सारे आरम्भ छोड़ दिये हैं वह भक्त मुझे प्रिय है।

बारहवें अध्याय में भक्त–लक्ष्णों में एक लक्षण कहा है शुचि। विशेष बात यह बतायी कि उसका साध्य–ध्येय तो पवित्र होता ही है परन्तु साधन भी पवित्र होता है पवित्र साधन का भी वह उपयोग करता है। यदि साधन पवित्र नहीं होगा तो पवित्र साध्य की प्राप्ति भी अबाधित नहीं रहेगी। मानव सेवा उसका साधन होगा तो सेवा करते हुए वह किसी को भी दुख नहीं पहुँचायेगा। जिसकी सेवा करेगा उसका हित तो देखेगा ही लेकिन अन्य किसी का भी अहित नहीं होने देगा।

उसकी हर क्रिया में उसका यही स्वभाव प्रकट होगा। अपने साधनों को वह हिफाजत से रखेगा सूत कातनें के बाद चरखा साफ करके रखेगा। परिश्रम का काम पूरा होने के बाद औजार साफ करके रखेगा। इस्तेमाल करते समय साफ ढंग से इस्तेमाल करेगा, टूटने फूटने नहीं देगा, समय पर दुरुस्ती कर लेगा औजार रखने की जगह भी साफ सुथरी रखेगा ऐसा अन्तबहि निर्मल साधु भक्त अपने निवास से स्थान को भी पवित्र बनाता है। ऐसा मनुष्य जहाँ जाता है वह स्थान पवित्र बनता है वहाँ के वातावरण में प्रसन्नता फैल जाती है। यदि तीर्थस्थान में हो तो वह उस तीर्थस्थल को स्वच्छ बनायेगा। आज हमारे सभी तीर्थस्थान गन्दगी के घर बने हैं। वहाँ नित्य बड़ी तादाद में जनता इकटठा होती है। और समूर्च क्षेत्र को गन्दा बना देती हैं भगवान को चढ़ायें गये फूल, फल, प्रसाद के दोनें को भी नदी में बहा देते हैं। और उसे खराब कर देते है। उल्टे यदि किसी मन्दिर में कोई साधु रहता है तो वह आसपास के क्षेत्र को साफ करके रखता है। अपनी आत्मशुद्धि से वातावरण में प्रसन्नता भर देता है। ऐसा साधु अपनी पवित्रता के कारण तीर्थ क्षेत्र का भी आधारभूत बन जाता है। ऐसे अन्तबह्यि निर्मल मनुष्य के लिए ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

अमानित्वमदंभित्यमहिंसा, क्षान्तिरार्जवम्।

आचार्योपासनं शौचं, स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।

अनु– नम्रता, दंभशून्यत्व, अहिंसा, ऋजुता, क्षमा, पावित्र्य, गुरुशुश्रूषा स्थिरता, आत्मसंयम

तेरहवें अध्याय में ज्ञानी के लक्षणों में भी एक लक्षण पावित्र्य बताया है। हमारी संस्कृति में अन्तर और बाह्य दोनों को समान महत्व का माना है। बल्कि बाह्य अन्तर का प्रतिबिम्ब माना है।

अन्तर को स्वच्छ करता है ज्ञान और बाह्य को कर्मयोग। जैसे – जैसे ज्ञान बढ़ता जाता है। वैसे–वैसे चित्त की मलिनता की परतें हटती जाती हैं। जैसे–जैसे मनुष्य के हाथ नियमित रूप से काम करते जाते हैं। वैसे–वैसे बाह्य स्वच्छता बढ़ती जाती है। दोनों के लिए सातत्य की जरूरत है। सातत्य के बिना न अन्तर की शुचिता प्राप्त होगी, न बाहर की स्वच्छता ही।

कर्मयोग का अर्थ ही सात्विक कर्म है। व्यर्थ उठा– परक करकें किया हुआ कर्मयोग नहीं कहलायेगा। जो कर्म आपका अन्तबह्यि स्वच्छ रखता है वही कर्मयोग है। ऐसे पुरुष के शरीर और मन कपूर के जैसे बन जाते हैं। उसके कर्मो ने उसे बाहर से धो डाला है और ज्ञान ने अन्तर को अलोंकित कर दिया है।

प्रवृति च निवृति च, जना न विदुरासुराः।
न शौचनापि चाचारो, न सत्यं तेषु विद्यतें।।

अनु– कृत्य अकृत्य क्या है। आसुरी जन जानते नहीं। वे न स्वच्छता जानते हैं न आचार, न सत्य ही

" स्वच्छता– अन्तबह्यि निर्मलता, शरीर, वस्त्र, घर, उपकरण, आसपास की जगह आदि को निर्मल (स्वच्छ) रखने की वृति तथा तदनुसार कृति

– गीताचिन्तन

यह है सोलहवें अध्याय का असुरों का लक्षण। मनुष्य अपनी कृति ही से असुर बनता है। या देवता बनता है । जिन्हें सात्विकता का स्पर्श ही नहीं हुआ है ऐसे ये असुर तम में पड़े हुये रहते हैं। या तो सुखोंपभोग प्राप्त करने रात दिन उठक–पटक करते रहते हैं। ऐसी वृत्ति के परिणाम उनको चारों ओर नजर आते हैं। शरीर, वस्त्र, घर, आंगन, साधन सामग्री सभी अस्त–व्यस्त, अस्वच्छ, आलस्य के कारण या बेतहाशा उठक–पटक के कारण इधर – उधर ध्यान देने की फुरसत नहीं होती। आलस्य चैन और उठक–पटक कर किया हुआ कर्म, आसुरी वृति को दिया हुआ निमन्त्रण ही होता है। अगर इस आसुरी वृत्ति को खाद पानी मिलता रहेगा तो मनुष्य असुर बन ही जायेगा इसलिए हर पल सावधान जागृत रहना चाहिए स्वच्छ आचार, स्वच्छ विचार, स्वच्छ उच्चार और स्वच्छ वार–वार

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं, शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिसा च शारीर तप उच्यतें।।

अनु – गुरु देवता आदि की पूजा, स्वच्छता वीर्य संग्रह, अहिंसा, शारीरिक ऋजुता देह तप कहलायेगा।

मनुष्य बारह–बारह साल तपस्या करके तपस्वी होता है। तप यानी सत्कार्य के लिए अपने को सौंपना जो असल वस्तु है उसको तप उज्जवल बनाता है। तप से शुद्धि होती हैं। दोष जाते हैं। जैसे अग्नि में परखा हुआ सोना। गीता में स्वच्छता को तप कहा है। स्वच्छता के लिए शरीर को पिघलाना पड़ता है। कष्ट उठाने पड़ते हैं। सातत्यपूर्वक तपस्या करनी पड़ती है।

स्वच्छता का तप करने के बाद वस्तु का, स्थान का, देह का, मनुष्य का असली रूप प्रकट होता है। ऊपर की मलिनता हट जाती है। मनुष्य का मूल रूप शुद्ध है। स्वच्छता का तप इस मूल रूप की ओर मनुष्य को अग्रसर करता है। मनुष्य जीवन को सुन्दर बनाता है पवित्र बनाता है। स्वच्छ, सुन्दर, पवित्र, ये हैं सीढ़ियाँ पूर्णत्व की ओर जाने की।

आचार्य जी का आगामी कार्यक्रम इस प्रकार है।

गिलोय की उत्पत्ति के विषय में भाव प्रकाश में लेख है कि राम–रावण युद्ध के समय रावण की मृत्यु पर प्रसन्न होकर देवेन्द्र ने स्वर्ग से अमृत की वर्षा की थी और परिणामस्वरूप सारे मृत वानर सेना के योद्धा जीवित हो गये। वानरों के शरीर से अमृत की बूँदें पृथ्वी पर जहाँ–जहाँ गिरी थी वहाँ सर्वत्र गुडूची पैदा हो गई। इस प्रकार से गुडूची या गिलोय की उत्पत्ति अमृत से हुई है। गिलोय के कई नाम आयुर्वेद में हैं – अलग–अलग भाषाओं में अलग नाम है। हिन्दी में गिलोय या गुडूची या अमृता के नाम से पुकारते हैं। मधुपर्णी, छिन्नरुहा जीवन्ती, सोमा, रासायनी, चन्द्रहासा, वयस्या, कुण्डली, धीरा, देन निर्मिता आदि नाम हैं।

गिलोय चरपरी, कड़वी, कसैली, बलदायक, वात, पित्त, कफ तीनों दोषों का नाश करती है। दाह, प्रमेह खाँसी, पीलिया, कुष्ठ, ज्वर ,वमन, क्रिमी बवासीर, श्वास, हृदय रोग तथा वात नाशक है। इसके पत्ते, रस तथा काढ़ा बनाकर प्रयोग करते हैं। इसे शीतज्वर, शुक्र क्षय, मूत्र दोष, दौर्बल्य में प्रयोग करते हैं। नीमचढ़ी गिलोय अधिक प्रभावी मानी जाती है। इस प्रकार से पत्ते, तथा तने सभी का प्रयोग करते हैं। पत्तों को ही चबाकर खा सकते हैं।

तुलसी–

तुलसी के गुण को भी ग्रामीण लोग जानते हैं और इसे प्रयोग में लाते हैं। इसके, सुरसा, सुलभा बहु मंजरी, गौरी, शूलहनी, देव दुन्दुभि आदि कई नाम हैं।

गुण–

चरपरी, कड़वी, अग्नि दीपक, हृदय को हितकारी, गरम, पित्त को बढ़ाने वाली रक्त, विकार पसली की पीड़ा, कफ तथा वात को नष्ट करने वाली है। सफेद व काली दोनों प्रकार की तुलसी गुण में समान हैं।

तुलसी का पौधा हर घर में पाया जाता है। इसकी हिन्दु लोग पूजा करते हैं। पत्तों से सुगन्ध आती है। इसके पत्र, बीज आदि सभी पचांग प्रयोग में लाते हैं। नीबू के साथ दाद आदि को भी नष्ट करती है। कुछ लोग मानते हैं कि इसके पत्तों को दाँतों से चबाना नहीं चाहिये। रस निकाल कर प्रयोग कर सकते हैं अथवा काढ़ा बना कर प्रयोग में लाया जाता है। ऋतु परिवर्तन हो रहा है अत: तुलसी का प्रयोग विशेष रूप से कर सकते हैं।

योग–साधना कृषि कर्मवत्

आचार्य चन्द्रहास शर्मा, एम.ए.एम.एड.

योग–साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छा किसान बनने की आवश्यकता है। कृषिकर्म के रहस्यों को ठीक–ठीक हृदयगम कर लेने पर योग–साधना में भूल–चूक कम होती हैं। जिस प्रकार सभी संस्कृतियों का आधार स्तम्भ कृषिकर्म है, उसी प्रकार सभी प्रकार की साधनाओं के ज्ञान का आधार भी कृषि कर्म है। सन्त–शिरोमणि तुलसी कृषि कर्म के रूपक से अध्यात्म ज्ञान की व्याख्या करते हुए कहते हैं :–

तुलसी काया खेत है,
मनसा भयो किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं,
बुवै सो लुनै निदान।।

इस शरीर रूपी खेत में मन रूपी किसान पाप पुण्य के विविध प्रकार के कर्मरूपी बीजों को बोता और काटता रहता है। जीव मन के आधीन होकर मनमुख बना इन्द्रियों की वहिर्मुखता के द्वारा विषयासक्त होकर कर्माशय में पापपुण्य के कर्मो का विस्तार करके जन्मायु तथा भोग प्राप्त करता रहता है।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

यही कहानी जन्म जन्मान्तरों से दुहराता चला जाता है। अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप ही यह जीव सुख–दुख का भोक्ता बना रहता है। कोई बिरला माई का लाल ही योगयुक्त होकर कर्म करने का विज्ञान जानकर अपने कर्माशय को निर्बीज कर देता है। बिना बीज की खेती करने का उत्तम तरीका योगी जानता है। वह सब कुछ करते हुए भी अकर्त्ता रहता है अतः उसे सुख–दुःख के द्वन्द्व में नहीं पड़ना पड़ता। विवेक–ख्याति की भूमिका पर पहुँचकर योगी अविद्या जन्य सभी क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियों को ज्ञानाग्नि से जलाकर राख कर देता है। जिस प्रकार अग्नि से भुने हुए बीज फिर नहीं उगते उसी तरह ज्ञानाग्नि से दग्ध कर्म जन्ममरण के कारण नहीं होते। दूसरे जो कर्म वासना एवं कामना रहित प्रकृतिजन्य होकर निष्काम भाव को प्राप्त हो जाते हैं वे भी पुनः जन्म के कारण नहीं बनते। यथा जिन धानों को कूट कर उनके ऊपर का छिलका उतार दिया जाए तो फिर चावल बोने पर नहीं उग सकते हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में भगवान बुद्ध और भारद्वाज ब्राह्मण का उपाख्यान मिलता है जिसमें भगवान बुद्ध ने आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए भली प्रकार खेती करने की क्रिया को समझने का उपदेश दिया है। कृषि कर्म सर्वोत्तम कार्य है।

उत्तम खेती मध्यम वनिज,

अधम चाकरी भीख निदान।

खेती करना हर किसान से नहीं आता। अच्छा किसान बनने के लिए उसके पास हल बैल, बीज, सिंचाई के साधन तथा अच्छी भूमि चाहिए। इन साधनों के साथ–साथ पुरुषार्थ, धैर्य उत्साह, गृहनक्षत्रों के उदयास्त का थान भी होना चाहिए। तभी अच्छी फसल उठा सकेगा। अच्छे किसान आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन एक पोटली में बीज भिगोकर उत्तम बीज की परीक्षा किया करते हैं जो बीज दूसरे दिन तौलने पर पहली तोल से अधिक हो जाते हैं उन बीजों से उत्तम फसल होती है। इसी तरह हस्त चित्रा, स्वाति आदि नक्षत्रों में गेहूँ चना आदि धान्य बोने से चूहे स्यार आदि के उपद्रव नहीं होते। इसी तरह योग–साधना में गुरु मन्त्र साधनारस्थली, काल, स्वस्थ शरीर तथा अभ्यास का संयोग सिद्धि दायक होता है। जहाँ एक भी साधन कमजोर होता है वहाँ योग भ्रष्ट स्थिति बन जाया करती है। भगवान बुद्ध ने भारद्वाज से कहा कि आध्यात्मिक खेती करने के लिए श्रद्धा का बीज चाहिए। श्रद्धा सत्यनिष्ठा का दूसरा नाम है। सत् चित् आनन्द को पाने के लिए जीवन शुद्ध और सात्विक बनाना पड़ेगा। ज्यों–ज्यों जीवन में सरलता तथा निष्कामता आती जाती है त्यों–त्यों श्रद्धा रूपी सुमन खिलने लगते हैं। महर्षि वाल्मीकि जी भगवान के निवास योग्य स्थलों के निर्देश प्रसंग में निष्कपट हृदय को भगवान का सदन बताते हैं –

जिन्हकें कपट दम्भ नहि माया।

तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।

श्रद्धा की कोख से ही धर्म का जन्म होता है। अपरोक्ष में प्रत्यक्ष जैसी अनुभूति श्रद्धा के द्वारा ही सम्भव है। शास्त्र, गुरुदेव तथा इष्ट कृपा को सत्य मानना और सत्य जानना श्रद्धा है :–

श्रद्धा बिना धर्म नहि होई।

धर्म से ही वस्तु अवस्तु का विवेक होता है तथा योग के मार्ग पर साधक अग्रसर होता है :–

धर्म ते विरति योग ते ज्ञाना।

ज्ञान मोक्षप्रद वेदबखाना।।

कृषि के लिए श्रद्धा के बीज चाहिए। जैसे एक बीज एक बोने पर अपने जैसे सैकड़ों बीजों को उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार श्रद्धा से ही साधन मंत्र तथा गुरुदेव में विश्वास होता है जिससे श्रद्धा ही शत–शत रूपों में ऋद्धियों–सिद्धियों तथा योग–समाधि की विभिन्न अवस्थाओं में आविर्भूत होती है। श्रद्धा रूपी बीज को बुद्धि रूपी भूमि में बोने से वह बीज फलता है। किन्तु बिना खाद पानी के कोई बीज अच्छी तरह पौधे तथा पुण्य फल के रूप में परिणत नहीं हो पाता। अतः श्रद्धा रूपी बीज के लिए तप रूपी वृष्टि चाहिए। थोड़े बहुत जल से श्रद्धा पल्लवित नहीं होती। घनघोर तप की वर्षा चाहिए। उपनिषद् में भी **'तपसा चीयते ब्रह्म'** के साथ–साथ **'तपसा वर्द्धते श्रद्धा'** यह वचन मिलता है। तप से ही सृष्टि का निर्माण हुआ है। तप ही सृष्टि का आधार है। जो कुछ भी कठिन अथवा दुहराराध्य, अतिदूर तथा अनिश्चित है वह सब तप से सुसाध्य हो जाता है। देवता, मनुष्य अथवा राक्षस तप के प्रभाव से ही मोक्ष, ज्ञान–विज्ञान, रूप ऐश्वर्य तथा अभीप्सित वस्तुएँ प्राप्त करते हैं। जपध्यान, अर्चन, ब्रह्मचर्य,

प्राणायाम, मौन, इन्द्रियनिग्रह, द्वन्द्व सहन आदि सभी तप कहलाते हैं। तप सात्विक–राजसिक तथा तामसिक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। ऊर्ध्वरेतस की साधना सात्विक तप है। सकाम साधना राजस् तप है तथा मारणमोहन उच्चाटन की क्रियाओं के लिए अपने शरीर को कष्ट देना तामस तप है। आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य एवं जप ध्यान, प्राणायाम आदि की साधनाएँ ही उत्तम तप हैं। पातंजल सूत्र के द्वितीय पाद के प्रथम सूत्र तथा चतुर्थ पाद के प्रथम सूत्र के भाष्य में महर्षि व्यास क्रमशः तप का प्रयोजन बताते हैं कि जप के बिना अनादि जन्मों के कर्मों की वासना से अशुद्ध मलयुक्त चित्त के विषय जाल की शुद्धि नहीं होती, फलतः अन्तरायों तथा विक्षेपों से छुटकारा नहीं मिलना। अतः यह निश्चित सिद्धान्त है कि तप के बिना योग कभी भी सफल नहीं हो सकता। तप के प्रभाव से संकल्प सिद्धि हो जाती है। योगी जो भी कामना करता है वह तत्काल पूर्ण होती है।

श्रद्धा रूपी बीज को उगाने के लिए तप की वृष्टि करनी चाहिये। बीज बोने के लिए हल से पृथ्वी को अच्छी तरह जोता जाता है, भगवान बुद्ध कहते हैं कि प्रज्ञारूपी हल से योगी को जोतने का कार्य चाहिए। प्रज्ञा समत्वबुद्धि है।

बुद्धि युक्तो जहतीह
उभे सुकृत दुष्कृते।

गीता में भगवान ने बुद्धि पूर्वक विचार कर कर्म करने का उपदेश दिया है यही बुद्धियोग सुन्दरतम् हल है।

बुद्धि योग मुपाश्रित्य
मच्चित्तः सततं भव।

बुद्धि पूर्वक किये गये कर्म बन्धन के कारण नहीं बनते। यदि दुष्कर्म करने वाला भी अपने कर्म पर विचार करे तो उसे अपने किये हुए पर पछतावा होता है। बुद्धि यथार्थज्ञान अवश्य करा देती है भगवान बुद्ध प्रज्ञाहल से कर्मभूमि को जोतने की बात कहते हैं। इस कृषि क्षेत्र की सीमाएँ हैं – वाक्संयम और आहार संयम। वाक्संयम अर्थात् मौन से इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। मुनि मौन से ही होता है। आहार संयम से जितेन्द्रिय हो जाता है। इस क्षेत्र को पुरुषार्थ अर्थात् साधना रूपी बैलों से जोता जाता है। पुरुषार्थ बैलों पर मनका जुआ है। मन को संयमित कर पुरुषार्थ करने से इस कृषि से अमरत्व के फल की प्राप्ति होती है।

एवमेसा कसी कट्ठा, सा होति अमतफला।
एतं कसीं कसित्वान, सब्ब दुक्खापमुच्चति।।

जो इस प्रकार कृषि करना जान लेता है वह दैहिक, दैविक तथा भौतिक सभी प्रकार के दुःखों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

परम करुणार्णव श्री गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त मंत्र चितिशक्ति के द्वार को खोलने में चाबी का काम करता है। जैसे किसान बीज बोकर निश्चिन्त होकर नहीं बैठ जाता। बल्कि प्रतिक्षण खेती के विषय में जागरूक रहता है। बीज की शक्ति को कमजोर करने के लिए खेत में बहुत सा खर–पतवार बीज के साथ–साथ उगने लगता है। चतुर किसान खुरपी लेकर बीज को बचाता हुआ खरपतवार अलग

करने के निए निराई और गुढ़ाई करता है :-

कृषि निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोहमद माना।।

जिस तरह कृषि को समृद्ध बनाने के लिए निराई आवश्यक है उसी प्रकार आध्यात्मिक खेती की सम्पन्नता के लिए मल आवरण और विक्षेपों का परिहार आवश्यक है। अनात्म पदार्थों में आत्म प्रतीति अविद्या का लक्षण है । जो रहने वाला नहीं है उसमें आसक्ति मोह है। उसे अपने पास रखकर प्रसन्नता का अनुभव मद है तथा उसे अपना मानना अहंकार है। ईश्वर मद–न मोह–न तथा मदारि हैं मदमोह और अहंकार के रहते चित्त–वृत्ति के व्युत्थान समिट नहीं सकते। फिर शान्त स्वरसवाही संस्कारों का प्रवाह और एकाग्रता कैसे प्राप्त हो सकती है। अतः साधक को विवेक ज्ञान से मोह भ्रम संशय सब दूर करने चाहिए। जब मन बाहर पकड़ से अलग हो जायगा तभी वह अन्तर्मुखी होकर ध्यान और समाधि का आनन्द ले सकेगा।

बीज में ही वृक्ष छिपा होता है। किन्तु बीज वृक्ष तभी बनता है जब वह अपना रूपान्तर करता है। अपने को मिटा डालता है। यदि बीज यह सोचने लगे कि 'मैं भी रहूँ' तो बीज कभी वृक्ष नहीं बन सकता। बीज वृक्ष बनने के लिए धरती के अंधकार में पड़कर धूप की तपिश सहता है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि जो सुख:दुख हँसते – हँसते सह लेता है वह अमृतपान का अधिकारी बन जाता है। सुख और दुःख दोनों ही उद्विग्न करने वाले हैं। दोनों ही आते हैं और चले जाते हैं। सदा नहीं रहने पाते। अतः तितिक्षु बनकर उन्हें सह लेना ही बुद्धिमानी है। किसान यदि बीज को रोज उखाड़कर देखे कि कितना विकास हुआ तो बीज समूल नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार साधक यदि धैर्य और प्रतीक्षा तथा निरन्तर अभ्यास को छोड़कर तुरन्त सिद्धि की इच्छा करने लग जायगा तो अपनी साधना बीच में ही छोड़कर बिना दूध की गाय की तरह हो जाएगा। किसान अच्छी फसल न होने पर भी खेती करना नहीं छोड़ता। लगा ही रहता है एक बार ही ऐसी दैवकृपा होती है उसका घाटा पूरा हो जाता है।

श्रीमद्भगवद् गीता के तेरहवें अध्याय में कृषिकर्म के आध्यात्मिक रूपक की विस्तार से व्याख्या की गई है। भगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन यह शरीर ही कर्मक्षेत्र है, कुरुक्षेत्र है। इसमें बैठा जीवास्था क्षेत्रज्ञ है।

इदं शरीरं कौन्तेय, क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः, क्षेत्रज्ञ इति तद्विदुः।। (13/1)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश में पांच महाभूत अहंकार, बुद्धि तथा अव्यक्त प्रकृति एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध रूप विषय इच्छा, द्वेष, सुख दुःख, शरीर, चेतना, धृति ये क्षेत्र का विस्तार है। त्रिगुणों के द्वारा अनेकों जन्मों से यह क्षेत्र यहाँ वहाँ बना रहा है। जब तक प्रकृति पुरुष का विवेक अर्थात् दोनों की अलग–अलग सत्ता का यथार्थ बोध नहीं होता तब तक **'कारणं गुणासंगोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु '** के नियमानुसार गुणों में बँधा यह शुद्ध–बुद्ध चैतन्य जीवात्मा प्रकृति के वश में होकर नाना प्रकार की योनियों में जन्मता और मरता रहता है। ज्ञान हो जाने पर जिस प्रकार आकाश सब में व्याप्त होता हुआ भी किसी पदार्थ से दूषित नहीं होता

उसी प्रकार यह सर्वव्यापक आत्मा शरीर और प्रकृति के संग रहने पर भी उसके गुणधर्मों से निर्लिप्त बना रहता है। यह स्थिति योग की वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मितानुगत समाधि की भूमिकाओं में संयम करने से आ जाती है। योगी प्रकृति के पंच महाभूतों से लेकर बुद्धि तथा महत् तक के सभी विश्लेषणों को समाधि द्वारा साक्षात्कार कर जान लेता है। जानने से प्रकृति के गुण–धर्मों से उसे वैराग्य हो जाता है। वैराग्य होते ही वह अपने निज शुद्ध ज्योति स्वरूप में स्थित होकर अजन्मा अमृत–धर्मा तथा कूटस्थ अविकारी स्थिति में पहुँच जाता है। जहाँ न मृत्यु है, न बुढ़ापा और न जन्म है न मरण। सर्वत्र **'एक मेवाद्वितीयम्'** ब्रह्मैवेदं सर्वम् भासित होता है।

किसान का जीवन कितना तपस्वी, सरल तथा सन्तोषी होता है। यदि वह योगमार्ग का पथिक बन जाए तो बहुत शीघ्र योगी ध्यानी बन सकता है। बांका, रांका, नामदेव और नरसी मेहता सच्चे किसान थे, जिन्होंने राम नाम की फसल उगाना सीख लिया था। हमारी कर्मभूमि परती पड़ी हुई है उसे बुद्धि के हल से जोतकर उसमें से काम क्रोध लोभ मोह की घास निकाल फेंके और उसमें प्रभु नाम के दाने डालकर जप और ध्यान तथा श्रद्धा तप एवं ब्रह्मचर्य से उसे सींचकर पल्लवित करते रहें तो एक दिन यह जीव रूपी किसान इस मिट्टी के शरीर रूपी खेत में प्रभु कृपा रूपी फसल उगाकर मालामाल हो जाएगा। जैसे किसान खेत की एक क्यारी का जल रोककर दूसरी में कर देता है वैसे ही योगी तप और धर्म के विकास द्वारा अधर्म रूपी आवरण हटा कर प्रकृति में इच्छित परिणाम पैदा कर सकेगा। योग सूत्र में योगी की इस सामर्थ्य की उपमा किसान से ही दी गई है –

निमित्तम प्रयोजकं प्रकृतीनां
वरणभेद स्तुततः क्षेत्रिकवत्। – योग सूत्र 4/3

चरित्र की परिभाषा

चरित्र व्यक्ति की वह महान शक्ति है, जिससे उसके आन्तरिक सद्गुणों का प्रकाश दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। व्यक्ति के आन्तरिक गुण, उसका सत्य, परोपकार, प्रेम, करुणा, अहिंसा, शुचिता, दया, क्षमा, सहानुभूति, सद्भावना और प्राणिमात्र के प्रति सच्चा प्रेम ही तो है। ये गुण व्यक्ति की आत्मा को महान बनाते हैं तथा उसके चरित्र निर्माण में महान योग देते हैं। चरित्रवान् व्यक्ति की ओर सभी स्वतः आकृष्ट होते हैं।

–डॉ. श्री ला. च. अहीरवाल

आयुर्वेद का ज्ञान पहले पहल स्वर्गलोक तक ही सीमित था। पुन: मर्त्यलोक में जब प्राणिमात्र आधि व्याधि से युक्त हुआ तब तत्कालीन ऋषियों ने इन व्याधियों से छूटने के उपायों का चिन्तन किया उन्होंने अपने ध्यान योग के माध्यम से इस बात को जान लिया कि इन रोगों के निराकरण का उपाय आयुर्वेद इन्द्र के पास है। इसलिए समस्त प्राणियों पर दयार्द्र हो महर्षि भरद्वाज इन्द्र के पास गये तथा इन्द्र से आयुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर वापिस लौटे। इस प्रकार से इस भूमण्डल पर आयुर्वेद का प्रचार व प्रसार हुआ।

योग एवं आयुर्वेद का सम्बन्ध :-

योग-दर्शन में योग के नौ अन्तराय बतलाए गये हैं उनमें पहला अन्तराय है व्याधि। इस अन्तराय की निवृत्ति आयुर्वेद के सम्यक् ज्ञान से ही संभव है। हमारे शरीर में कफ, पित्त व वात साम्यावस्था में रहने चाहिए। समस्त रोगों का कारण इन त्रिदोषों का दूषित होना ही है। इनके दूषित हो जाने पर ही हमारे शरीर में कई प्रकार के उपद्रव पैदा हो जाया करते हैं। हमारे शरीर में विद्यमान सप्त धातुओं का निर्माण उचित एवं सुचारु रूप से होना चाहिए उनमें से किसी के भी न्यूनाधिक्य हो जाने पर विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं।

हमारे शरीर में मुख्य पांच वायु हैं। उन सबका स्थान एवं कार्य का ज्ञान योग एवं आयुर्वेद दोनों दृष्टिकोण से अत्यावश्यक है। इनमें से यदि कोई वायु विकृत हो जाये तो उस स्थान विशेष पर रोग हो जाता है। मानव शरीर में पाए जाने वाले अधिकतर रोग इन वायुओं के दूषित होने पर ही होते हैं। इन वायुओं को उचित आहार-विहार द्वारा साम्यावस्था में रख कर हम स्वस्थ रह सकते हैं। हमारे शरीर से मुक्त अन्न का पायन जठराग्नि से हुआ करती है इसे ही वैश्वानर कहते हैं। असात्म्य (प्रकृति विरुद्ध) आहार विहार से यह अग्नि मन्द पड़ जाया करती है, जिसके फलस्वरूप कई प्रकार के उदर रोग व अन्य कई उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे रस रक्त आदि धातुओं का निर्माण सुचारु रूप से नहीं हो सकता। आयुर्वेद में स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण इस प्रकार से बतलाया है।

सम दोषा: समाग्निश्च, समधातु मलक्रिया।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मना:, स्वस्थइत्यभिधीयते।।

अर्थात् सम दोष, समाग्नि, सम धातु मल एवं सम क्रियाओं का होना आत्मा मन और इन्द्रियों की प्रसन्नता यह स्वस्थ मनुष्य के लक्षण हैं। आयुर्वेद का उद्देश्य मानव को पूर्णायु प्राप्त कराकर साथ ही साथ ही आत्मा तथा मन की प्रसन्नता रूपी आनन्द को दिलाना है आयुर्वेद का प्रथम उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाए रखना तथा दूसरा आर्त रोगी के रोग का निराकरण करना है। 'स्वस्थस्य स्वास्थय रक्षणं, आतुरस्यार्ति नाशनं आयुर्वेदस्य प्रयोजनम्' सुश्रुत के अनुसार भी।

व्याध्युपसृष्टानां
व्याधि परिमोक्ष:।
स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्य (सु.सू.अ.1.)

सिद्धियों की प्राप्ति के उपायों को बतलाते हुए कैवल्य पाद के प्रथम सूत्र में भगवान पतञ्जलि महाराज ने **'जन्मौषधिमन्त्रतपस्समाधिजा: सिद्धय:'** अर्थात् जन्म, औषधि मन्त्र तप तथा समाधि से सिद्धियों की प्राप्ति होती हैं, ऐसा बतलाया है। हिमालय के पावन उपत्यकाओं में इस प्रकार के कई दिव्य औषधियाँ व रसायन है जिनके सेवन से मन की एकाग्रता प्राप्त की जा सकती है। कई औषधियाँ ऐसी भी हैं जिनसे बुद्धि सूक्ष्म व स्मरण शक्ति अद्भुत हो जाती है। इस संदर्भ में एक घटना इस प्रकार सुनी जाती है।

दक्षिण भारत में किसी ब्राह्मण के दो पुत्र थे। उनमें से एक कुशाग्र बुद्धि का तथा दूसरा अत्यन्त मन्द बुद्धि का था उनके पिता ने दोनों को उच्च शिक्षा दिलानी चाही। परन्तु मन्द बुद्धि वाला पढ़ाई से हारकर उपराम हो गया।

एक बार कोई महात्मा उनके द्वार पर आए उन्होंने कृपा कर उस मन्द बुद्धि वाले को कोई जड़ी दे

आयुर्वेद एवं योग

डॉ. ब्रह्मचारी श्री दासलाल शर्मा

चूंकि योग तथा आयुर्वेद दोनों का उद्देश्य एक ही है तथा यह एक दूसरे के सहयोगी व पूरक हैं इसलिए प्रत्येक योग साधक को आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।' योग' शब्द की व्युत्पत्ति को पाठकों ने पिछले कई लेखों में सविस्तार पढ़ लिया है अत: यहाँ केवल 'आयुर्वेद' शब्द की व्युत्पत्ति अभीष्ट है।

' इण गतावित्यस्माद् धातो 'छन्दसीण :' इस उणदि सूत्र से उण प्रत्यय होकर आयु शब्द बनता है।'एति गच्छति इति आयु' ऐसा इसका विग्रह है। आयु शब्द मनुष्य के पर्याय के रूप में वैदिक निघण्टुओं में कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। **'आयुर्जीवित कालो'** अमरकोष कार ने जीवन के काल को आयु कहा है। तात्पर्य यह हुआ कि जन्म से मृत्यु पर्यन्त जो मनुष्य का काल व दूरी है उस पूरी अवधि को आयु कहते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार **' शरीरेन्दिय सत्वात्म संयोगो धारि जीवितम्'** अर्थात् शरीर इन्द्रियाँ मन तथा आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। महर्षि चरक ने आयुर्वेद की परिभाषा इस प्रकार की है।

हिताहितम् सुखं दु:खं, आयुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तं, आयुर्वेद: स उच्यते।।

आयु(आयुस्) शब्द की व्युत्पत्ति के अनन्तर वेद शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं।

(1). विद्= ज्ञाने अदादि गण की इस धातु से ज्ञानार्थक वेद शब्द बना है।

(2). विद्–सत्तायाम = विदादि गण के धातु से सत्ता अस्तित्व (अस्तित्व) अर्थ में वेद शब्द प्रयुक्त होता है अथवा जिसकी तीनों कालों में सत्ता रहती हो वह वेद है।

(3). विद–विचारणे– रुधादिगण की इस धातु से विचारने अर्थ में वेद शब्द व्यवहृत किया जाता है।

(4). विद–चेतनाख्य निवासेषु चुरादि गण की इस धातु से वेद चेतना, आख्यान तथा निवास अर्थ में आता है।

विदलृ लाभे तुदादिगण की इस धातु से लाभार्थक वेद शब्द बनता है।

इस प्रकार कई अर्थो में वेद शब्द का व्यवहार होता है क्योंकि धातुओं के कई अर्थ होते हैं। (धातूनामनेकार्यत्वात्)

विद शब्द से भाव अर्थ में (धम) प्रत्यय करके विद–धम् (अ)'पुगन्तलघुपदस्य च' सूत्र से लघुपधा इकार को एकार होकर वेद शब्द की निष्पत्ति हुई।

आयुर्वेद का समास–आयुषो वेद: –आयुर्वेद: (षष्ठी तत्पुरुष) आयु अर्थात् आयु सम्बन्धी ज्ञान आयुर्वेद है। आयुषे वेद: – आयुर्वेद: (चतुर्थी तत्पुरुष) के लिए ज्ञान। आयुर्ज्ञानार्थम् वेद:– आयुर्वेद: (मध्यम पदलोपी) समास होकर आयु+वेद का समास होकर आयुर्वेद शब्द बना है।

आयुर्वेद का भूमण्डल पर अवतरण व प्रचार:–

आयुर्वेद का अवतरण व प्रचार इस मर्त्यलोक में किस प्रकार से हुआ इसका उल्लेख आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस प्रकार है कि सर्व प्रथम ब्रह्मा से अश्विनी कुमारों ने उनसे इन्द्र ने प्राप्त किया। इस प्रकार

दी तथा खाने को कहा। लड़के ने जड़ी खाई परिणाम स्वरूप उसकी बुद्धि तीव्र हो गई है। एक बार श्रवण मात्र से उसे सब याद हो जाता था इस प्रकार से वह भी अत्यन्त मेधावी बन गया तथा सकल शास्त्रों को आवारपारी हो गया। यह था औषधि का चमत्कार।

योग एवं आयुर्वेद के क्रियाओं में समानता :–

योग अभ्यास में साधक को सर्व प्रथम आसन एवं षटकर्मो का अभ्यास करना आवश्यक हो जाता है। षटकर्मो के द्वारा हमारे शरीर व नाड़ियों के मल का शोधन किया जाता है ये षटकर्म हैं, नेति, धौति, न्योली, बस्ति, कपालभाति तथा त्राटक।

आयुर्वेद में भी त्रिदोष को साम्यावस्था में लाकर देह को सुदृढ़ व स्वस्थ बनाने के लिए 'पच्यकर्म' का सिद्धान्त चिकित्सा विज्ञान की मुकुटमणि है वमन, विरेचन निरूह, बस्ति अनुवासन वस्ति और शिरोविचेरन (नस्य) ये पाँच कर्म हैं। आयुर्वेद शास्त्रों में बस्ति कर्म की भूरि–भूरि प्रसंशा की है।

देखिए चरक संहिता सिद्धि स्थान में :–

तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वा चिकित्सामपि वस्तिमेके।

अर्थात् चिकित्सा का आधा भाग बस्ति ही है ऐसा आयुर्वेदज्ञ कहते हैं और कई विद्वान यह भी कहते हैं कि बस्ति चिकित्सा सारे रोगों की चिकित्सा है।

इस प्रकार आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में इन पञ्च कर्मो का बहुत महत्व है परन्तु आजकल आयुर्वेदीय चिकित्सक इन कर्मो के अभ्यास की ओर बहुत ही कम रुचि लेते हैं। इन्हीं पच्यकर्म व योग के षट कर्म की सहायता से प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति की स्थापना होती है।

आयुर्वेद में मोक्ष :–

जहाँ एक ओर आयुर्वेद में रोगी के आर्त को दूर करने का उपाय है वहाँ दूसरी ओर जीव को जन्म–मरण बन्धन से मुक्ति व ऐंकान्तिक आनन्द की प्राप्ति का विस्तार से वर्णन किया है। आयुर्वेद के अनुसार भी ऋतम्भरा प्रज्ञा के उदय होने पर योगों को (सत्याबुद्धि) की प्राप्ति होती है जिसकी सहायता से योगी अज्ञान को समूल नष्ट कर तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करता है। महर्षि चरक ने मोक्ष प्राप्ति के लिए उदयन मार्ग का वर्णन किया है जिससे साधक को सन्मार्ग पर चलने तथा निषिद्ध कर्मो का सुविस्तृत निर्देश है। इनके अनुसार मन जब पूर्ण रूप से आत्मा से स्थित हो जाता है तो साधक को अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति होती है। देखिए निम्न श्लोक में :–

इत्यष्ट विद्या माख्यातं , योगिनां वलमैश्वरम्

शुद्ध सत्व समाधानात्तत सर्वमुपजायते रज तथा तम दोषों की निवृत्ति होने पर तथा क्लिष्ट संस्कारों के क्षय होने पर कर्म बन्धन से जो मुक्ति मिलती है वही चरक के अनुसार मोक्ष है।

योगे मोक्षे च सर्वासां , वेदनानाम वर्तम,
मोक्षे निर्वृति नि:शेषा , योगी मोक्ष प्रवर्त्तक:।।

इस प्रकार आयुर्वेद ने भी योग के सिद्धान्तों का प्रतिपादन व पुष्टि की है। महर्षि चरक मोक्ष के लिए योग का आलम्बन लेने का उपदेश करते हैं।

अत: आयुर्वेद व योग दोनों एक दूसरे के आश्रित तथा सहयोगी हैं तथा दोनों का चरम लक्ष्य एक ही हैं।

सतरंगी सेहत

डॉ. शिखा शर्मा, आहार विज्ञानी

क्या आप एक ऐसे संसार की कल्पना कर सकते हैं, जिसमें रंग ही न हों। शायद ऐसा सोचना मुमकिन नहीं है क्योंकि जबसे हम आँखें खोलते हैं, हमें रंग दिखाई पड़ते हैं। ये रंग हमारे जीवन का अभिन्न अंग हैं। हर चीज में हैं ये रंग। रंगों को सौंदर्य बोध के दायरे से बाहर देखते हैं तो उनका अलग ही महत्व दिखाई देता है। इनका हमारे स्वास्थ्य से सीधा संबंध है। प्राचीन काल से ही रंगों से उपचार का काम होता रहा है, चाहे खाने में हो या रंगीन रोशनी को देखकर हो या फिर रंगीन शीशे की बोतलों को जिनमें पानी होता है, धूप में रखकर उसमें चिकित्सकीय गुण पैदा करने की बात हो। हर रंग कुछ कहता है। रंग शरीर में बने अलग–अलग चक्रों को प्रभावित करते हैं। रंगों से भावनाओं पर असर पड़ता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई थकान महसूस कर रहा है तो उसे पीला या लाल रंग देखने की सलाह दी जाती है। जहाँ तक खाने की बात है तो आहारविज्ञानी (डायटीशियन) ऐसा भोजन करने की सलाह देते हैं जिनमें इंद्रधनुषी रंग हों यानी सात रंग के खाद्य पदार्थों को शामिल करें।

नीला : आज्ञा चक्र

यह रंग आज्ञा चक्र से जुड़ा होता है। यह पूर्वाभास की ताकत देता है।

खाद्य पदार्थ : जामुन और जैतून।

लाभ : इनमें औषधीय गुण होते हैं।

बैंगनी : सहस्त्र चक्र

यह रंग सहस्त्र चक्र से जुड़ा होता है जो शरीर में सबसे ऊपर होता है। यह ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है।

खाद्य पदार्थ : अंगूर और कुछ किस्म की बेरीज। बैंगन जैसी सब्जियाँ।

लाभ : इनमें औषधीय गुण होते हैं।

लाल : मूलाधार चक्र

यह रंग मूलाधार चक्र से संबंधित है जो भूख और काम जैसी मूल भावनाओं का आधार है। शरीर की ताकत भी इसी से जुड़ी है। जब लोग अधिक थकान की बात करते हैं तो उसका अर्थ यही लगाया जाता है कि मूलाधार चक्र का संतुलन बिगड़ा हुआ है।

खाद्य पदार्थ : हर वह चीज जो लाल है जैसे टमाटर, गाजर, स्ट्रॉबेरी, तरबूज, लाल शिमला मिर्च, चेरी, सेब और अनार।

लाभ : टमाटर में लाइकोपीन होता है जिससे त्वचा में निखार आता है। सेब और अनार में विटामिन ए व थोड़ा बहुत लौह तत्व (आयरन) भी होता है।

नारंगी : स्वाधिष्ठान चक्र

यह रंग ताकत व गंभीरता का प्रतीक है। यह शरीर के दूसरे चक्र स्वाधिष्ठान चक्र से जुड़ा हुआ है। यह चक्र शरीर में भावनाओं व पानी की मात्रा को संतुलित रखता है। सोडियम व पोटेशियम जैसे खनिज लवण इस चक्र से जुड़े हैं और यदि इनमें कोई असंतुलन पैदा होता है तो तनाव बढ़ जाता है और किडनी संबंधी विकार होने लगते हैं।

खाद्य पदार्थ : सन्तरा, पीले गाजर, सीताफल।

लाभ : इनमें अल्फा कैरोटीन, बीटा कैरोटीन और हेस्पेरेडीन जैसे विटामिन होते हैं और पोटेशियम व क्रोमियम जैसे खनिज होते हैं। यदि आपको उच्च रक्तचाप की शिकायत रहती है तो इन्हें खाने से आपको लाभ मिलेगा।

पीला : मणिपुर चक्र

सकारात्मकता, आशा व नई ऊर्जा का द्योतक है यह रंग। आम तौर पर इसे खेल व खिलाड़ियों से जोड़कर देखा जाता है। यह मणिपुर चक्र से जुड़ा होता है और शारीरिक व दिमागी ताकत से इसका नाता है। **खाद्य पदार्थ :** हल्दी, सरसों, मक्का, अनानास इत्यादि।

लाभ : इस रंग के खाद्य पदार्थों से कई फायदे मिलते हैं। इनसे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है (हल्दी), विटामिन बी कॉम्प्लेक्स मिलता है (मक्का), पाचक रस बनते हैं (ब्रोमिलेन)। जो लोग अस्थमा से पीड़ित होते हैं, उन्हें इस रंग के खाद्य पदार्थों से फायदा मिलता है।

आसमानी : कंठ चक्र

आसमान और पानी का रंग, नीला कंठ चक्र से जुड़ा होता है। हमारे शरीर का दो तिहाई भाग पानी है। लिहाजा, यह रंग हमसे सीधे मेल खाता है।

खाद्य पदार्थ : ब्लू बेरीज।

लाभ : यह पोलीफेनोल से भरपूर होती हैं जो कैंसर से बचाती हैं।

हरा : हृदय चक्र

शरीर को यह रंग बहुत अधिक मात्रा में चाहिए। यह स्वास्थ्य व संतुलन का प्रतीक है। इनसे शिराओं का तनाव कम होता है और आराम मिलता है। पौधों का हरा रंग क्लोरोफिल के कारण होता है जो उनकी जीवनरेखा होती है।

खाद्य पदार्थ : हरी पत्तेदार सब्जियाँ, जो सलाद व सूप में प्रचुर मात्रा में खाई जाती हैं।

लाभ : हरी सब्जियों से भरपूर मात्रा में विटामिन ए, बी कॉम्प्लेक्स और सी, कैल्शियम (पालक व ब्रोकली) व अन्य खनिज मिलते हैं।

अत :– सम्बन्धित चक्र की साधना करते समय उसी से सम्बन्धित भोजन भी करना चाहिए।

जब से गुरु को चाहा है

रवि सक्सेना

जब से गुरु को चाहा है,
तब से गुरु ही गुरु हर ओर छाया है।
हमेशा इन आँखों में उसकी तस्वीर छपी रहती है।
जमीन से आसमान तलक उसकी छवि दिखती है।

याद करने की कभी उसको जरूरत नहीं पड़ी,
हमेशा सामने मेरे उसी की मूरत खड़ी।
जर्रे-जर्रे में उसी की खुश्बू समाई है,
उसकी तड़प कुछ ऐसी मुझमें समाई हैं।

जाने क्या ऐसी बात है तुझमें ?

जाने क्या ऐसी बात है, तेरी इस मूरत में ?
जो बार-बार इसे देखना मैं चाहूँ।
पल-पल अपने लबों से ये लफज खुद को सुनाऊँ,
आखिर, किस विधि मैं तुझ को पाऊँ ?
जिसे देखता हूँ, उसमें दिखता है तेरा ही नूर,
तू ही मेरा खुदा, तू ही मेरा महबूब।

हे सतगुरु ! मैं तुझसे क्या मागूँ ?
जब बिन माँगे ही सब कुछ तुझसे पाऊँ।
तू ही मेरा पहला और आखिरी प्यार है,
तेरे बिना जीवन ये मेरा बोझ के समान है।

अब तो मेरी जिंदगी में योग का संदेश ले के आजा,
जन्मों से भटकती रूह को मुक्ति का सन्मार्ग दिखा जा।

‘विज्ञातारमरे केन विजानीयात’

विज्ञातारमरे केन विजानीयात – विज्ञाता को कैसे जानोगे ? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता , तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का विम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे विम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा – यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो , तो इससे क्या हुआ ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। ''हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो'' – यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है ? – जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें ?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में हो वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है – और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

– *स्वामी विवेकानन्द*

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

प्रणव की महिमा

प्रणवात् प्रभवो रुद्रः प्रणवात् प्रभवो हरिः।
प्रणवात् प्रभवो ब्रह्मा, प्रणव एव अवशिष्यते।।

अर्थात्

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों की उत्पत्ति प्रणव अर्थात् ओंकार से है। और सबका प्रलय होने पर प्रणव ही शेष बच जाते हैं। यह प्रणव काल की सीमा का अतिक्रमण करके अखिल अण्ड ब्रह्माण्डों में व्याप्त है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा